※ श्रीनेमिनाथाय नमः ※

श्री सुकुमाल-चारित्र

टीकाकार :—

स्व० पं० नाथूलालजी दोशी

प्रकाशक:—

दुलीचन्द परवार

मालिक-जिनवाणी प्रचारक कार्यालय,

१६१।१, हरीसन रोड, कलकत्ता।

प्रथम बार] १९ ७ [न्योछावर १)

श्रीसुकुमाल-चरित्र
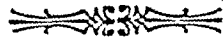
श्रीमत वीर जिनेशपद; कमल नमूं शिर नाय। जिनवाणी उरमें धरूं जजूं सुगुरुके पाय ॥ १ ॥ पंच परमगुरु जगतमैं; परम इष्ट पहिचान। मन वच तनकरि ध्यावतै॥ होत कर्मकी हानि ॥ २ ॥ चार घातिया घाततैं, दर्शनज्ञान अनन्त। सुख वीरज गुण जुत भये, नमूं सदा अरिहन्त ॥ ३ ॥ वसुविधि कर्म विनासिकरि लोकालोक निहार। निज स्वरूपमैं थिरभये, नमो सिद्ध अघहार ॥ ४ ॥ दर्शन ज्ञान चरित तप, वल पणविधि आचार, गहै महावै आप पर। नमूं सूरि हितकार ॥ ५ ॥ पढ़ैं पढ़ावैं औरकूं; देहैं श्रुत उपदेश। भौ कलेश मेरे हरो ॥ उवज्झाय परमेस ॥ ६ ॥ दर्शन ज्ञान चरित मय, शिव मारग सव साध। साधत है करि उग्रतप ॥ हरो सकल भवबाध ॥ ७ ॥ जाके नैक प्रसादतैं, मूढ सयानैं होय। ता श्रुतनके पादकूं, नमौं जोरि कर दोय ॥ ८ ॥ जिनसेनादिक सूरनैं, कीनें महा पुराण। तिनकी महिमा कहनकूं ॥ कौंन सकै मतिवान ॥ ९ ॥ वल साधव पूजित भये, नेमिचन्द्र वर सूर। गोमट्टसार सिद्धान्त रचि ॥ हरयो मोहमत भूरि ॥ १० ॥ वट्टकेर वसुनन्द मुनि, मुनि श्रावक आचार। वरनें पंचम कालमैं, जिनमारग अनुसार

॥ ११ ॥ कुंदकुंद वर सूरकी, महिमा कही न जाय। नाटकत्रय जिननैं रचे। अध्यातम दरशाय ॥ १२ ॥ पादपूज्य अकलंक मुनि, विद्यानंदि प्रवीन। तत्वारथ दश सूत्रकी। वृत्ति भनी जिन तीन ॥ १३ ॥ गणपति सम मतिश्रुत भए, उमास्वामि मुनिराय। तत्वारथ रचना कही ॥ दश अध्याय बनाय ॥ १४ ॥ इत्यादिक बहु मुनि भये, जिनमारग अनुसार। मिथ्या मतके वाद तम। हरे सूर उनहार ॥ १५ ॥ सकल कर्ति मुनि राज इक, भये महा-मतिमान। तिननैं श्रीसुकुमालको ॥ रच्यो चरित हित आन ॥ १६ ॥ ताको कछु संक्षेप अब; कहूं मूल अनुसार। नव अधि-कारनमें कह्यौ ॥ जो मुनिनैं विस्तार ॥ १७ ॥ वायुभूतका भवविखैं, सूर्यमित्र उपदेश। लहिकैं भी नांही तज्यो ॥ पापकर्मको लेश ॥ १८ ॥ कोट उदंबर कष्ट सहि, गदहीकी परजाय। पाप विविध फल भुगतही ॥ भई सूरडी जाय ॥ १९ ॥ तहां दुःख भुगते घने, आयु अंत तजि प्रान। भई कूकरी वाडमें। चंडालहिके थान ॥ २० ॥ क्रूर वदन विकराल तन, दुर्बल कष्ट अनेक। सहिकैं तिस चंडालके। भई सुता अविवेक ॥ २१ ॥ पाप उदयतैं कष्ट बहु, सहे आयु परजंत। फिर अब उपसम योगतैं ॥ भयो येक विरतंत ॥ २२ ॥ वायुभूत भवभूति मुनि, अग्निभूत तसु देखि। सूर्यमित्र मुनिराजतैं ॥ जान्यो हेतु विशेप ॥ २३ ॥ चंडाली ढिग आयकैं, दये गेहव्रतसार। येक दिवस की आयुभनी ॥ श्रीगुरु कियो विहार ॥ २४ ॥ गहि अनसन चंडालिका, अंत निदान विचार। नागसर्म त्रिदेवकैं ॥ भई सुता

हितकार ॥ २५ ॥ नागश्री येकै दिवस, नागपूजनै हेत । गु
वागमें सूर ढिग ॥ व्रतसम्यक्त समेत ॥ २६ ॥ व्रत गहि निजघर
आवतैं, सूर कही इस भांति । व्रत मत तजियो वालके ॥ छुरवावै
जो तात ॥ २७ ॥ करै वहुत हठ छोरनेंकौं तव हम ढ़िग
आय, श्रावकके व्रत छोरयो । और भांति नजहाय ॥ २८ ॥
घर आवत ही विप्रनैं, दीनीं गारि अनेक । व्रत छोरेविन गेहमैं ॥
नां राखू घडि एक ॥ २९ ॥ साथि विप्रकूं लेयकैं, आवैथी मुनि
पास । मगमै पण विध पापको ॥ फल देख्यौ दुखरासि ॥ ३० ॥
कही तातकूं पापफल, ये देखो परतच्छ । अव व्रत मैं कैसैं तजूं ॥
जिनतैं व्हैं सुख स्वच्छ ॥ ३१ ॥ व्रत तो तूं राखहि भलैं, पण
इकवर मुनिपास । देकैं वहुत उराहना ॥ आवैंगे निज वास
॥ ३२ ॥ जाय कहे कडवे वचन, मुनिकूं वहुत प्रकार । द्विज
पुत्रंनि व्रत देनको ॥ तेरो को अधिकार ॥ ३३ ॥ हम निज पुत्री
जानिकै, दीनें वरत विचार । तेरा इसमैं है कहा ॥ किण विधि
रुपै अपार ॥ ३४ ॥ शशि वाहन नृपकै ढिगैं, कीनी विप्र पुंकार
नागश्री मेरी सुता ॥ कोसत है मुनि वार ॥ ३५ ॥ सुनि नृप
आयो सूरिढिंग, परजन पुरजनसंग । करि प्रणाम मुनिकूं सकल
पूछ्यौ हेतु प्रसंग ॥ ३६ ॥ सूर्यमित्र मुनि वोलये, सुता हमारी
एह । वहुत शास्त्र हमतैं पढे ॥ उरमैं आनि सनेह ॥ ३७ ॥
विप्र भनैं मेरी तिया, नाग पूजतैं येह ॥ नागश्री पुत्री लई ।
यामैं किम संदेह ॥ ३८ ॥ फिर नृप मुनिकूं वीनयो, तुम सूरज
समसंत । किण विधि सुता पढायई ॥ कहो सकल विरतंत ॥ ३९॥

नागश्री शिर हाथ धरि, वायुभूत उच्चार। श्रुत पढनेको हाजरो॥ दरसाई तत्काल॥ ४० ॥ सोमसर्मके दोय सुत, पावक मारुतभूत मोढिग श्रुत अभ्यास करि॥ जेठो पावकभूत॥ ४१ ॥ मोढिग मुनि व्रतआदरे, येह हमारी संग। वायुभूत मुनि निंद्यतें॥ संच्यौ अशुभ अभंग॥ ४२ ॥ भावजके मुख लात दे, गधी सुरडी कूर। शुनी सुता चंडालकी॥ भुगते दुख भरपूर ॥ ४३ ॥ चंडालीको जातिमें, व्रत गहिधार निदान। भई सुता इस विप्रके नागश्री तजि प्रान॥ ४४ ॥ वायुभूतको जीव जो, सो नागश्री येह। सुता हमारी है सही॥ जानूं तजि संदेह॥ ४५ ॥ नृप द्विजनैं मुनि वृत गहे, नागश्री तसु मात॥ ४६ ॥ भई त्रिदेवी अर्जिका, वहु पुरवनिता साथ। कौशम्बी औ राजग्रही॥ दोउ पुरके भूपाल॥ अतिवल सुवल यतीसपैं॥ धरे महा वृत सार ॥ ४७ ॥ सूर्यमित्र मुनिराज फुनि, अग्निभूत दो धीर। अष्ट कर्म निमूल करि॥ भये निरञ्जन वीर॥ ४८ ॥ नागश्री द्विज ब्राह्मणी, तजे जुगतितैं प्रान। अच्युत दिवमें ऊपजे॥ तीनूंही इक थान॥ ४९ ॥ पद्मनाभ नामा भयो, नागश्री सुरराव। माता तनु रक्षक भयो॥ पितामहर्द्धिक देव॥ ५० ॥ आरणकल्प विमानमें, तीनू नृप वरदेव, सुख विभूत विलशी तहां। कहत न आवे छेव॥ ५१ ॥ नागसर्म चरचय भयो, सेठ सुरिन्दही दत्त। भई त्रिदेवी जीव चई॥ प्रिया सेठ वरदत्त ॥ ५२ ॥ नाम यसोभद्रा दिवस, येकहि श्री गुरुपाय। वंदन करि सुत होनको॥ प्रश्न कियो सिर नाय ॥ ५३ ॥ वर्द्धमान मुनिराज

तव, कह्यो यथावत हेत। सुत तेरे ह्वै गो सही। और सुनहू धर चेत॥ ५४ ॥ सुत मुखचन्द विलोकिकैं, तेरो पति तजि धाम। मुनिव्रत पालैंगो सही॥ तो सुत भी अभिराम॥ ५५॥ मुनिके दर्शन मात्रतैं; अथवा सुनिकैं वैंन। पंच महाव्रत पालसी। तजि सुरसम सुख चैन॥ ५६॥ आरण दिवकूं छांडिकैं, शशिवाहन सुरआय। वैस्य यसोभद्र हि भयो॥ सेठ तियाको भाय॥ ५७॥ चयकैं आरण कल्पतैं, सुवल भूपचर आय। उज्जयनीको पति भयो॥ नृप बृषभांक सुराय॥ ५८॥ अतिवल चर नृप सुत भयो, कनकध्वज यह आय। गर्भ यसोभद्र-हितणौं, नागश्री चरथाय॥ ५९॥ नव महीने पूरण भये, उपज्यौ सुत सुकुमार। दाशी वशन प्रसुतके, धोवैंथी घरद्वार॥ ६०॥ कोई द्विज लखि वशनकूं, दई वधाई जाय। तेरे सुत अव ऊपज्यौं, अहौ सेठ सुखदाय॥ ६१॥ बहुत द्रव्य द्विजकूं दयो, सुतकी वदन निहार। पंच महाव्रत आदरे, सकल परिग्रह छार॥ ६२॥ करि उच्छह सुत होनको, सेठ.णी जु वुलाय। अपने सकल कुटूंवकू, भूषन वसन दिवाय॥ ६३॥ महल वतीस वनाइये, सुवरनके अभिराम। मध्य सर्वतोभद्र इक, रतनमई शुभधाम॥ ६४॥ वडे वडे नृप सेठकी, कन्या शुभग वत्तीस। येक वारमैं व्याह दई, सुतकूं निजघर सीस॥ ६५॥ वहुत संपदातैं भरे, दीने इक इक धाम। तिनमैं ते सुकुमाल जुत, रमैं भोग अभिराम॥ ६६॥ फिर वुलाय दरवानकूं, कहो येक समझाय। जैन जतीकूं गेहमैं, आने मति द्यौ भाय

॥ ६७ ॥ नृप लेने सकनां भयो, सुनि कंवल बहुमोल। सो सेठाणीनैं लियो, हियो खजानो खोलि ॥ ६८ ॥ भास्यो कठिन निहारिकैं, कंवर नवीनूं अङ्ग। तब करवाये तासके, सेठाणी नैं भंग ॥ ६९ ॥ पुत्र वधुके पावकी, मोचरिया बनवाय दई पहरनेंकूं तिन्हैं। धनका फिकर न लाय ॥ ७० ॥ खोलि सुदामा सौधसिर, सिंघासनपै बैठि। पश्चिम दिसा निहारती, तिष्टैथी हितपैठि ॥ ७१ ॥ गृद्ध मोचरी येकले, नृप मन्दिर सिर जाय। आमिख भ्रमतैं खानकों, कीनूं बहुत उपाय ॥ ७२ ॥ चूंच घाततैं कठिनलखि, डारी सोधमझार। लखि नृप किंकरकूं कही, किनकी पादुका सार ॥ ७३ ॥ सेठ कंवर सुकुमारकी, वनिताकी है भूप। सुनि नृप कंवर निहारने, हेतु चल्यौ सुखरूप ॥ ७४ ॥ निजघर सन्मुख भूपकौं, सेठाणी लखिजाय। पूछी किणसे हेतु तैं, आये हौ नरराय ॥ ७५ ॥ तोसुत देखन आइयो, और न कारण कोय। देखि कुमारकूं भूप अति मनमैं हर्षित होय ॥ ७६ ॥ सेठाणीके वैनतैं, नृप कुमार इक धाम। भोजन करि नृपनैं कही, तेरो सुत अभिराम ॥ ७७ ॥ है पण औगुण तीनये, क्यों न करै तु ख्यास। नैंन झरै आसन अथिर, इक इक तंदुल ग्रास ॥ ७८ ॥ सदा रमैं मणिधाममैं, दीपक तेज निहार। नीर नैनमैं आइयो, औगुण नाहि लगार ॥ ७९ ॥ सरस्यूंके दाणे चुभे, कोमल तनके माहि। यातैं चल आसण रह्यो, यह भी औगुण नांहि ॥ ८० ॥ भीजे सगरी रैनके कोमल तंदुल खाय, वे थोरे लखि और हम। तंदुल दिये मिलाय ॥ ८१ ॥ इक इक

चांवल वीनके, खायें तंदुल सोय। पुण्यवान् इस कंवरमैं, औगुण नैकनि कोय ॥ ८२ ॥ बहुत प्रशंसा कंवरकी, करि नृप अपने धाम। गयो कंवर सुख भोगवै, सुरपति सम अभिराम ॥ ८३ ॥ यशोभद्र व्रत धारिकैं, च्यार ज्ञानकूं पाय। आयु अलप सुकुमालकी, जानी अवध वसाय ॥ ८४ ॥ धाम पास जिनधाममैं, आये योग विचार। च्यारमासको हेतुए, लियो सुवोधनसार ॥ ८५ ॥ मालीमुखतैं सूरिकूं, जानि गमन तत्काल आय सूरसैं हम कही, उठ जावो तुमवार ॥ ८६ ॥ मेरे सुत ये येक है, तुम दर्शनतैं सूरि। पंचमहाव्रत आदरै, मेरे दुख ह्वै भूर ॥८७॥ साढ सुकुल पुनौ दिवस, जावैं हम किस धाम। योग च्यार महीनां गह्यौ, और न दूजो काम ॥ ८८ ॥ जाग्रत जानि कुमारकूं, अवधि-ज्ञानतैं सूरि। तीन लोक प्रज्ञप्तिको पाठ कियो गुणभूर ॥ ९० ॥ नरकधरा वर्णन करी, विकरत होणे हेत। मध्यलोक वर्णन कियो, चैत्यालयन समेत ॥ ९१ ॥ देव लोकको कथन करि, अच्युत स्वर्गके मांहि। पद्म गुल्म सुविमानमैं, पद्मनाभ सुर ठांहि ॥ ९२ ॥ भोग सम्पदा बहुत विधि, वर्णन करी विथार। जाती समरण ज्ञानकौ, पायो तव सुकुमार ॥ ९३ ॥ ह्वै विकरत भव भोगसूं, नीसरनेंको दाव। हेरन लाग्यौ महलमैं, लाध्यौ नहीं उपाव ॥ ९४ ॥ वांधि वसन थंभानिकैं, पकरि उतर्‌यो धीर। सूरपाय सिर नायकैं, दिक्षा जाचों वीर ॥ ९५ ॥ भलो विचारी आजि तुम, तीन दिवस अवशेप। आयु रही निज काजकरि, धारि दिगम्बर भेप ॥ ९६ ॥ गहि मुनिव्रत संन्यास जुत, कोमल

तन अविकार। अरणि मध्य निजरूपमैं, थिरता धरी अपार ॥९७॥ यशोभद्र तिस थानतैं, अन्य जिनालय जाय। तिष्टे बहुत कलेशकी, हानि जानि मनमांहि॥९८॥ माता आदि कुटुंब नृप, हेरि सकल वनवास। नांहि देखि सुकुमालकूं, दुखित भये निरास॥९९॥ वायुभूत भव भाविजा, अग्निभूतकी नार। भरमि भवावली वनिविखैं, स्यालनि भई करार॥१००॥ मुनिके कोमल पांवतैं, वही रुधिरकी धार। कठिन भूमिके फरसतैं, वन परजंत अपार॥१०१॥ ताहि चाटिवा स्यालिनी, धाराके अनुसार। गई गहनके मध्य थल, जाहि तिष्ठै सुकुमार॥१०२॥ पूरव वैर निदानतैं, क्रोध बहुत उर आनि। खान लगी पग दाहिनों, सनैं सनैं अघखानि॥१०३॥ ताकी पिल्ली वामपग, भखन लगी करचाव। येक दिवसमें जांघलौं, खाये दोनों पांव॥१०४॥ दूजे दिन जंघानलौं, भखे वदन विकरार। तीजे दिन अध रैनमें, कीनूं उदर विदार॥१०५॥ आंति खैंचि खाने लगी, तास वेदना भार। सह्यौ सकल सम भावतैं, मुनिवर श्री सुकुमार॥१०६॥ बारह भावना धरम दश, रत्नत्रय चित आंनि। पंच परम गुरु ध्यानतैं, त्यागे अपने प्रान॥१०७॥ सर्वारथ सिध ऊपरें, सकल सुखनिको थान। आयु जलधि तेतीसकी, एक हाथ तनुमांन॥१०८॥ अवधि विक्रिया लोकके, अंत प्रयंत बखान। तिनतैं चय नर देह धरि, होवैंगे भवपार॥१०९॥ आगे चउविधि देवजुत, इन्द्र पूजने काज। स्वामीके शुभ देहकूं, वाहन चढ़ि सवसाज॥११०॥ वादित्रनिको नाद

सुनि, माता भई सचेत। जाति पुत्रको मरण शुभ, आई बंधु-समेत ॥ १११ ॥ अर्धगात्र लखि पुत्रको, परी भूमिके मांहि। रुदन कियो वनिता वहुत, सो कछु कह्यौ न जाय ॥ ११२ ॥ व्है सचेत लहि वोधकूं, नृप सज्जन परिवार। दाग देय सुत देहकूं, गई जिनालय द्वार ॥ ११३ ॥ पूजा करि जिनराजकी, यसोभद्र सिर नाय। सुतपैं वहुत सनेहको, कारण पूछ्यौ भाय ॥ ११४ ॥ पूरव भवकी मात तूं, इसभी भवमैं मात। भई कंवर सुकुमारकी, यह सनेहकी वात ॥ ११५ ॥ नागसर्म गतभव पिता, सोभी यह भव मांहि। पिता भयो सुकुमारको, नाग श्री सुकुमार ॥ ११६ ॥ शशि वाहनको जीवमैं, यसोभद्र तुम भ्रात। सुवल भयो वृषभांक नृप, अतिवल सुत विख्यात ॥ ११७ ॥ कनकध्वज नामा भयो, अव मैं तपधर च्यार। ज्ञान पाय संवोधनेकूं, आयो हू जिन द्वार ॥ ११८ ॥ वनिता च्यार कुमारको, गरभवती तिह काल। तिनकूं घर धन संपदा, सौंपि तज्यौ जग जाल ॥ ११९ ॥ शेष वधू जुत अर्जिका, भई कंवरकी मात। नृप लघु सुतकूं राजदे, वड़े पुत्रकी साथ ॥ १२० ॥ राज संपदा छारिकैं, यशोभद्र मुनि पासि। पंच महाव्रत आदरे, पायो ज्ञानप्रकाश ॥ १२१ ॥ सकल संघजुत सूर वहु, देशनि कियो विहार। भविजनकूं संवोधिकैं, कीनें भवके पार ॥ १२२ ॥ यशोभद्र वृषभांक, कनक ध्वज सुरिंददत्त। च्यारूं मुनि निज रूपको, जान्यों सगरो तत्त ॥ १२३ ॥ शुक्ल ध्यान करवा लगहि, घाति अरनिकूं घाति। केवल दर्शन ज्ञानजुत, लही चिदानंद जाति ॥ १२४ ॥ लोकालोक विलोकिकैं,

फुनि अघात करिनास। चिदानंद निज रूप मय, पायो शिवपुर वास ॥ १२५ ॥ माताश्री सुकुमालकी, धरि अनसन सन्यास। समभावनितैं प्रान तजि, पायो अच्युत वास ॥ १२६ ॥ और अर्जिका प्राण तजि, अपने तप अनुसार। शोडप दिवलौं ऊपनें, सुर सुरत्रिय मनहार ॥ १२७ ॥ सर्वारथसिधलौं गये, सेप जती तजि प्रान। जानूं भवि संक्षेपतैं, इह विधि चरित वखान ॥ १२८ ॥ अब सुकुमाल चरित्रकौं, सकल ज्ञानके हेत। देश वचनिका मय लिखूं, पढ़ो सुनो धरिचेत ॥१२९ ॥ वसि प्रमाद कहूं भूलिकैं, अरथ लिखन जो होय। पंडितजन सब सोधियो, मूलग्रन्थ अवलोय ॥ १३० ॥

※ टीका ※

नमः श्री विश्वनाथाय ॥ पंचकल्याणभागिने। महते वर्द्धमानाय ॥ नित्यानन्द गुणाश्रये ॥ १ ॥ अर्थ—मैं जो सकलकीर्ति नामां आचार्य ताको वर्द्धमान तीर्थंकरके अर्थि नमस्कार हो, कैसे हैं? श्रीविश्वनाथाय कहिये शोभायमान तीन भुवनका स्वामी है, अथवा स्थावर जंगम सकल जीवनिका ईश्वर है, अर पंच-कल्याणाभागिने—कहिये गर्भ, जन्म, तप, केवल, और निर्वाण ऐसे पंचकल्यानकविर्खैं जाकौं इन्द्रादिक देव सेवैं है, महते कहिये सर्वनिके पूज्य हैं, अथवा चतुर्विधि संघविर्खैं महान श्रेष्ट है, वहुरि नित्यानन्दगुणाश्रये—कहिये सास्वते आनन्दरूप जे अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंत वीर्य आदि अनंता-

नंत गुण तिनका समुद्र है, भावार्थ—तीन भुवनका स्वामी, पंच-कल्यानकका नायक, अनंतगुणनिको समुद्र, अन्तिम तीर्थंकर-कूं आचार्यनैं निर्विघ्न शास्त्रकी समाप्तिके अर्थि आदि विख नमस्कार किया है, वर्द्धमान तीर्थंकरकरि प्रकाश्या सत्यार्थ धर्म तीन जगतकी लक्ष्मी, अर सुखकी खानि, और इस पंचमकाल विखैं मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकानिकरि आचरण किया प्रवर्तै है, अर पंचमकालके अंतपर्यंत रहैगा, जो वचन रूप कि-रणनिकरि सर्वदा एकान्त मतरूपजे अज्ञान सोही अंधकारका समूह ताहि मूलतैं उच्छेद करि भव्य जीवनिके मोक्षकी प्राप्तिके अर्थि रत्नत्रय रूप मुक्तिका मारग प्रगट दिखाया, श्री कहिये सोभायमान सम्यग्ज्ञानकी वृद्धितैं देवनिने जाका वर्द्धमान नाम प्रसिद्ध किया, अर अंतरंगविखैं क्रोधादिक वैरीनके जीतवेतैं वीर अथवा महावीर ऐसा नाम पाया, अर स्वयं कहिए आप ही परोपदेशविना आपूं आप सत्यार्थ मार्गकूं जान्यां, तातैं सन्मति ऐसा नाम कहाया, या प्रकार वर्द्धमान, वीर, महावीर, सन्मति च्यार नामके धारक, धर्मरूप चक्रवर्ति पदके नायक, त्रिजग-गतपूज्य अंतिम तीर्थंकरकूं मैं नमस्कार करूं हूं, जो भगवान शुक्ल ध्यान रूप खड्गकरि वरजोरीतैं घातिक कर्मरूप वैरीको नाश करि लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञानकूं पाय चतुर्थ कालकी आदि विखैं भोले आर्य पुरुषनिके कल्याणको सिद्धिके अर्थि मुनि श्रा-वकके भेद करि दोय प्रकार धर्म दिव्य ध्वनि करि उपदेस्या ऐसा प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव ताहि नमस्कार करूं हूं, कैसा है धर्म ?

स्वर्ग मुक्तिके सुखका दाता है, अर अजितनाथकूं आदिदेय पार्श्व-नाथ पर्यन्त जे अवशेष बाइस तीर्थंकर तिनके चरणकमलनिका सेवन करूं हूं, काहेके अर्थि ? तिनके अनंत ज्ञानादि गुणनिकी प्राप्तिके अर्थि, कैसे हैं बावीस तीर्थंकर? सर्व भव्य जीवनिके हितविखैं उद्यमी है, अर इन्द्र धरणेंन्द्र चक्रवर्त्यादिकनिकरि वंदनीक पूजनीक अनंत गुणनिके समुद्र है, अर संसारतैं भयभीत जे भव्य जीव तिनके शरणैं आधार है, बहुरि सर्व मंगलके कर्ता लोकविखैं सर्वोत्तम है, अर पूरव पश्चिम विदेहविखैं विद्यमान शीमंदरादि वीस तीर्थ-करनिके चरणकमलनिकूं हृदयविखैं स्थापन करूं हूं, कैसे हैं? जे भव्य जीवनिके मोक्ष सुखके अर्थि सत्यार्थ मार्गकूं प्रवर्तावै है, और अनन्त गुणनिके समुद्र दिव्य ध्वनि करि मनुष्यनिकूं तथा तिर्यंचनिकूं संबोधे है, अर त्रिकाल गोचर अनंत केवली हुवे, आगैं अनंतानंत होहिगे, और वर्तमानविखैं वर्तें है तिन सबनिकूं स्तवूं हूं, वंदों हौ, नमस्कार करूं हूं, काहेके अर्थि ? सारभूत आत्म-ज्ञानकी सिद्धिके अर्थि, जे महान ध्यान रूप खड्गकरि कर्म नौ कर्मरूप वैरीनका नाश करि, सम्यक्त्वादि अष्टगुणनिकरि सहित, और जिनोंने मुक्तिरूप साम्राज्य पद अंगीकार किया, अर लोक-सिखरिपैं हैं आवास जिनका इन्द्र, नरेंद्र, नागेंद्रनिकरि वन्दनीक, ऐसे अनंत सिद्धपरमेष्ठीनकूं सिद्धगतिकी प्राप्तिके अर्थि सदा-काल नमस्कार करूं हूं, जे छत्तीस गुणनिकरिसहित, अर संसार समुद्रविखैं भव्यजीवनिके त्यारवेकूं जिहाज समान अर परम उत्कृष्ट पंचाचारकूं मोक्षके अर्थि आप आचरण करै है, अर

विनयवान शिष्यनिकूं आचरण करावै हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठीनकूं पंचाचार की सिद्धिके अर्थि मैं नमस्कार करूं हूं, कैसे हैं आचार्य परमेष्टी ? विना हेतु सकल जीवनिके उपकार करनहारे हैं जे ग्यारह अंग चौदह पूर्वरूप शास्त्रसमुद्रकूं आप पार भये,-अर अन्य योगीश्वरनिकूं पार करणहारे ऐसें उपाध्याय परमेष्ठीनके चरणारविंदनिकूं समस्त श्रुतका लाभके अर्थि अर निर्वाण द्वीपकी प्राप्तिके अर्थि नमस्कार करूं हूं, कैसे है उपाध्याय परमेष्ठी ? त्रिकाल दर्शनी प्रज्ञा जो बुद्धि सोई जिहाज ताका है आश्रय जिनकै, अर सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रमय अमोलिक धन ताके ईश्वर है, जे शीतकाल विषैं नदीनके तटपैं, ग्रीष्मविखैं पर्वतके शिखर ऊपर, अर वर्षाकालमैं वृक्षनिकैं नीचै, ध्यानकूं धरते महान धीरवीर तपके धारक धर्मशुक्लध्यान करि निरंतर मोक्षका साधन करते पर्वतनिकी गुफा विखैं, दुर्गमस्थानविखैं वा निर्जन बनविखैं, सिंघसमान निर्भय तिष्ठै है, तिन सर्वसाधु परमेष्ठीनकूं नमस्कार करूं हूं, कैसे है साधु परमेष्ठी ? निरंतर आत्महित विखैं विद्यमान है, ये पंचपरमगुरु ज्ञानीजननिकरि वंदनीक स्तुति करवेयोग्य इस शास्त्रका आरंभके सिद्धकेअर्थिं मोकूं अपने उत्कृष्ट गुण देहू, महानकवित्तादि गुणनिकरि परिपूर्ण, अर द्वादशांग श्रुत समुद्रके पारकूं प्राप्त भये, ऐसे गौतमादि गणधर तिनका आत्मोक बुद्धिकेअर्थि ध्यान करूं हूं, कैसे है ? ध्येय कहिये ध्यायवेयोग्य है, जाके प्रसादकरि काव्यनिकी रचना करवेविखैं समर्थ मेरी बुद्धि अति निर्मल भई; अर चारित्रके आचरणविखैं पवित्र भई प्रवीण भई ऐसी जिनेन्द्र

भगवानके मुखकमलविखैं निवास करनेवारी जिनवाणी ताहि मैं स्तवूं हूं, वन्दूं हूं, नमस्कार करूं हूं, कैसी है जिनवाणी? तीन जगतके जीवनिकूं मातासमान उपकार करनहारी है, अर त-त्वनिके समस्त अर्थनिकी दिखावनहारी है, जिनेन्द्र भगवानकी दिव्यध्वनितैं अर्थरूप ग्रहण करि गणधर देवनिनै जिनकी अङ्ग पूर्व, अर प्रकीर्णकरूप रचना करी, अर प्रत्येक बुद्धि ऋद्धिके धारक योगीश्वरनिकरि वा श्रुतकेवलीनकरि धारण किये, बहुरि सर्व अर्थके प्रकाशक जिनेन्द्र भगवानकरि कहे सांचे अर्थ तिनकूं ज्ञानादि गुणकी प्राप्तिके अर्थि नमस्कार करूं हूं, अर सुकुमालमुनि-कूं मैं नमस्कार करूं हूं, कैसे है? महाधीर है, अर कामदेव-समान मनोग्य रूपका धारक महापराक्रमी महोत्तम वैश्यका कुल ताविखैं उत्पन्न भया है, अर महालक्ष्मीकरि सोभायमान जगत-विखैं माननेयोग्य महासाहसी है, बहुरि महाधीरवीर उपसर्गनिका जीतनिहारा है, काहेके अर्थि नमस्कार करूं हूं? जो शक्ति सुकुमाल मुनिविखैं भई सोई शक्ति कहिए सामर्थ्य मेरेविषैं हूं प्रगट होहु ताके अर्थि नमस्कार करूं हूं, याभांति अरहंत, सिद्ध, देव अर केवलीकेभाखे द्वादशांग सिद्धांत, अर आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु गणधर श्रुतकेवली आदिपरमगुरु, तिनकूं मंगलके अर्थि मैनें नमस्कार किया, स्तवन किया, प्रार्थना किई, ते सर्व मंगल करो, अर मल जो पाप ताका नाश करो, समस्त विघ्नकूं दूर करो अर शास्त्रका प्रारम्भकी पूर्णता करो, इष्टकी सिद्धकरो, कैसे है पंचपरमगुरु? सर्व मंगलनिके कर्ता है, अर अपमङ्गलनिके विना-

सक है, याप्रकार स्वस्य कहिये आपके अर भव्यजीवनिके अनिष्ट को शांतिके अर्थि, इष्टकी प्राप्तिके अर्थि, कल्याणरूप हितके अर्थि, अपने इष्ट जे देव, धर्म अर सतगुरु तिनकूं गुणनिकरि सहित नमस्कार करि, स्तुति करि, श्रीसुकुमालस्वामी ? क्षायिक सम्यक्त्वआदि अनेक गुणनिका समुद्र है, जो सुकुमाल वैश्यकुलरूप आकाशविखैं सूर्यसमान उद्योतकरि भया, अर शिरसके फूलसमान अत्यन्त कोमल है अङ्ग कहिये शरीर जाका, महाघोरवीर उपसर्गनिकरि वज्रसमान, अतिअभेद्य इन्द्रसमान, दिव्य भोगनिका भोगनेवाला, सुखरूप समुद्रके मध्यविखैं प्राप्त भया, अर घोर जो ध्यान तातैं दुर्निवार सकल परिषहनका जीतन हारा, स्यालनीकृत घोर उपसर्ग परिषह सुकुमाल मुनि तीन दिनपर्यंत सहिकरि समभावनितैं प्राणनिका त्यागकरि सर्वारथसिद्धकूं प्राप्त भया ; जो सुकुमालमुनि ताका चरित्र मैं कहूंगा, अर इसही चरित्रके कहवेकरि सूर्यमित्र महामुनिके सिद्धान्तनिके पठनादिकनिका जो फल प्रगट भया ताकू भी कहूंगा, वहुरी याही ग्रन्थके मध्य अग्निभूत वायुभूत आदि वहुत महानपुरुषनिकी शुभ कथा है ताहि वर्णन करूंगा, इत्यादिक श्रेष्ठ अर प्रवीण महापुरुषनिके समूहकरि परिपूर्ण जो यह चरित्र ताके सुणवेकरि वुद्धिमान पुरुषनिकै श्रुतका अभ्यास आदि अर्थका चिंतवन अर धर्मविखैं धर्मका फलविखैं प्रीति, संसारदेहभोगनि विखैं उदासीनता आदि अनेक गुण वृद्धिकूं प्राप्ति होय है, वहुरी पापकर्मसहित रागद्वेष आदि सकल दोषनिका निराकरण होय है, भोकल्याणका अर्थि भव्यजीवहो,

तुम इसचरित्रकूं श्रेष्ठफल पूर्वोक्त प्रकार जानि इस चरित्रकूं सुनौं, मैं आगमके अनुसार तुमकूं कहूं हूं।

अथानन्तर असंख्यात द्वीप समुद्रनिके मध्यविखैं जम्बूवृक्षकर चिन्हत सार्थक नाम कूं धारण करता जम्बूनामा द्वीप शोभे है कैसाहै द्वीप ? लाख जोजनका है विस्तार जाका, अर लवण समुद्र रूप वस्त्रकरि वेष्टित मांनूं चक्रवर्ती है, [कैसा है द्वीप अक कैसा है चक्रवर्ति देव ? नरोत्तमनिकरि आश्रित है, भावार्थ—द्वीपविखैं तो अनेकदेव अनेक उत्तमपुरुप अर समस्त विद्याधर सेवे है, अर चक्र-वर्तिकूं छह खण्ड निवासी देव अर महामण्डलेश्वर आदि अनेक उत्तम पुरुप सेवे है, अर द्वीपविखैं तो अनेक नदी पर्वत देश गहन वन आदि दुर्भाग्यस्थान है, अर चक्रवर्ति अनेक नदी पर्वत देश गढ़ इनका नायक है, ताद्वीपविखैं लाख जोजन ऊँचा, अर पोड़स जिन-मंदिरनिकरि महारमणीक, सुदर्शननामा मेरु इन्द्र समान सोहे है, मेरु तो जलकरि भरे सरोवर, अर गरुड़ आदि पक्षी, तिनकरि सोभायमान है, अर इन्द्र अनेक अप्सरा अनेक देवनकरि मंडित हैं, अर मेरु तो ध्यानमैं तल्लीन ऐसे चारणमुनि तिनकरि सेवनीक है, अर इन्द्र जे चारण गंधर्व आदि अनेक गुनीजन, तिनकरि सेवनीक है, ता मेरुकी दक्षण दिशाविखैं पांचसें छवीस योजन छह: कलाके विस्तार कहिये दक्षण उत्तर चौड़ा भरत क्षेत्र है, सो कैसा है भरतक्षेत्र ? धर्म अर सुख इनकी खानि है, अर खेचर कहिये विद्याधर, भूचर कहिये भोमगोचरी, अर अमर कहिये देव, तिन-करि भरया है, अर अनेक धर्मात्मा पुरुपनिकरि भरया है, मानूं

धर्मका निवासी है, ता भारतखंडकै मध्य आर्यखण्ड है, कैसा है ? अर्हंत कहिये तीर्थंकर, वा सामान्यकेवली, अर चक्री कहिये नवनिधि चौदह रत्न षट्खण्डधराका मालीक चक्रवर्ती, अर आदि शब्दतैं वलभद्र, नारायग, प्रतिनारायण, त्रेसठ सलाकापुरुष, चौवीस कामदेव, इत्यादिकनिकरि भूषित है, अर धर्मात्मा पुरुषनिकै स्वर्ग अर मोक्षके साधनका आदिहेतु कहिये मूल कारण है, भावार्थ—आर्यखण्डविखैं उत्तम कुलविखैं जन्म पायेंविन अन्य क्षेत्रनितैं मोक्षका लाभ नाहीं, तिस आर्यखण्डकै मध्य नाभि समान अंगनामा देश शोभे है ? जाके च्यार दरवाजे होय सो तौ पुर, अर पत्तन कहिये जाविखैं रत्नादिककी खानि होय, अर जाके येक वोर नदीका वेट होवैं, येक वोर पर्वतका वेट होवैं, बीचमैं सहर वसैं, ताको वेट संज्ञा है, अर अद्रि कहिये पर्वत, वन, अनेक वाग, अर जाकै च्यारूतरफ काटनेकी वाडि होय ताकी गाम संज्ञा है, इत्यादिकनिकरि पूरित कहिये भरया है, अर धर्मात्मा, क्षुल्लक श्रावक, तेरह प्रकार चारित्रके धारक महामुनि, अर असंजमी सम्यक्ती गृही श्रावक, इनकरि निरन्तर शोभायमान है, ता देशविखैं चंपापुरी नगरी ऊंचा कोट, ऊंचे दरवाजे, अर चहूं ओर अगाध खाईकरि अयोध्या समान सोभे है, अर धर्मात्मा सम्यग्दृष्टी श्रावक अर धर्मात्मा सुरवीर सुभट तिनकरि भरी है, वहुरि अनेक जिनमंदिरनिविखैं उत्साह सास्वते होय है, अर भव्यजीव स्वाध्याय, पूजन, गान नृतनादिकरि पुण्यका उपार्जन करे है, ता पूरिका सूर्यसमान प्रतापी, धर्मात्मा, पुण्यवान, ज्ञानी, अति

चतुर चंद्रवाहन नामा राजा, ताकै लक्ष्मीमती नामा राणी, प्राणनिहूतैं अति प्यारी शुभ लक्षण निकरि परिपूर्ण साक्षात लक्ष्मीसमान होती भई, अर वा राजाकै जिनमततैं पराङ्मुख, खोटे शास्त्रनिका ज्ञाता मिथ्यामदकरि उद्धत, अतिरौद्र नागसर्मनामा पुरोहित होता भया, ताकै सौभाग्यकी खानि त्रिदेवीनामा ब्राह्मणी स्त्री भई, तिनकै साक्षात लक्ष्मी समान नागश्रीनामा पुत्री विवेक, रूप, सौभाग्यकरि सोभायमान अर ज्ञान, विज्ञान आदि गुण निकरि शोभायमान, देवांगनासमान शोभाकूं धारती भई, एकदिन नागश्री अनेक ब्राह्मणनिकी कन्यानिकरिसहित नगरके वाहर नागके मंदिर मूढ़बुद्धीकरि पुण्यकी प्राप्तिके अर्थि नागके पूजिवेकुं गईहूती, कैसी है नागश्री ? शुभकर्मकी करणहारी क्रीडामैं है उत्साहजाकै, तहां पुण्यके उदयकरि सूर्यमित्र अग्नि भूत है नाम जिनके ऐसे दोय मुनिकुं देखे, कैसे है मुनि ? पुण्य कर्मके कारण है, अर शुभलक्षणनिकरि संयुक्त, अर सत्पुरुषनिकुं निर्मल धर्मोपदेशके दाथिक, अनेक शुद्धिनकरि मंडित, महाप्रवीण, द्वादशांग श्रुतसमुद्रके पारगामी, वहुरि सब जीवनिके हित विखैं उद्यमी, अर रत्नत्रय तपही है धनजिनकै, ध्यान अर अध्ययन जो जिनवाणीका पठन, ताविखैं सावधान है, शुद्ध प्राशुक सिलापर पद्मासन तिष्ठे है, मुन्यांकेसमीप मस्तक नमाय मुनिके चरणारविंदनिकूं नमस्कारकरि भोलेपनेंतैं मुन्यांके समीप बैठा, सूर्यमित्र मुनि नागश्रीके अगामी शुभगति होणी जाणि अर पूर्वभवनिके ज्ञानवेनिमित्त कोमलवाणीकर कहते भये, हे पुत्री, तूं ग्रहस्थका धर्म अंगीकारकरि, कैसा है धर्म ? स्वर्गनिवा-

सकुं तौ आंगण समान है, भावार्थ-धर्मके प्रसादतैं स्वर्गकी प्राप्ति तौ विनाउपाय ही होय है, धर्मके सेवन करि इस भवविखैं अर परभवविखैं मनोवांछित सुख उपजे है, जातैं धर्मके प्रसाद करि तीनलोक-संबंधी इंद्र, नरेन्द्र, नागेन्द्रनिके सुख होय है, धर्मात्मा जीवनके सैंकड़ां मनोरथ विराजतन स्वयमेव सिद्ध होय है, मदिरा, मांस, अर मधु कहिये सहेत इनके त्यादकरि अर जुवांआदि सप्तव्यसननिका त्याग करि अर जीवनिको दया करनी, सांच बचन बोलना, चारी-का त्याग करना, शीलव्रत पालना, अर परिग्रह प्रमाणीक राखणां, इन पंच अणुव्रतके आचरणकरि गृहस्थका धर्म होय है, जातैं व्रती धर्मात्मा जीव धर्मके फलकरि देवलोककुं प्राप्त होय है, अर यो आत्मा अव्रतो पापके उदयकरि नरकगति तिर्यंचगतिकूं प्राप्त होय है या भांति जानि जे सुखके अभिलाषी जीव हैं तिननैं वारह अव्रत काम-चेष्टा, पांचों इन्द्रियनके विषय, अर खोटे आचरण, इनका त्याग-करि सांचेव्रत ग्रहण करनां योग्य है, यह वचन मुनिके सुनि नागश्री बोली हे तात, सुखके अभिलाषी जीव जिन व्रतनिकूं धर्मके अर्थि आचरण करे हैं ते व्रत कौनसे हैं ते मोहि कहो तदि सूर्यमित्र मुनि-राज बोले, हे पुत्री, व्रतनिका किंचित स्वरुप कहूं हूं सो तूं आत्म-हित के अर्थि सुनि, सकल त्रसजीवनिकूं मनवचनकायकरि चित्त-विखैं निजसमान धारण करि, सव जीवनिके हितकारी प्रथमही अहिंसा अणुव्रत ग्रहण करनां, जैसैं सुखके अर्थि शुभक्रिया जो आ-चरण सो उसका करनहारा हो है, तैसैं समस्त जीवनिकूं अभय-दानका दातिक ऐसा जो अहिंसा अणुव्रत सो समस्त व्रतनिका मूल

कारण है, भावार्थ-एक दयाबिना सकल क्रिया आचरण अर व्रतनि- का धारण करनां विफल है, जातैं तीन लोककी राज्य संपदातैंहू स- मस्त जीवनिके अपनां अपनां जीवतव्य अत्यंत प्रिय है, भावार्थ— प्राणनिका वियोग भये पीछैं तीन लोककी संपदा कौन भोगवेगा ? तातैं हे पुत्री, आदिविखैं अहिंसा अणुव्रत प्रधान है, अर इस अहिं- सा अणुव्रतविखैंही व्रतनिकी रक्षाके अर्थी वडका वडवाला, पीपलकी गोल, उमर, कठुमर, अर पाकरफल इन पंचउदंबरनिकरि सहित म- दिरामांस अर मधु कहिये सहेत, इनका ज्ञानी जीवनिनैं विखसमान जान त्याग करना योग्य है, जातैं श्रावकके येही आठ मूलगुण हैं, वहुरि मदिरा-मांस सहेत अर पंचउदंवर इनके भक्षणविखैंलंपटी जे जीव हैं तिनकै दयारूपवुद्धिका तो लेसहू नांहीं है, अर दयाविना समस्त जीवनिकी दया है मूल जामैं ऐसा जो दयामयीधर्म ताका विचार कैसै होय ? भावार्थ—जाके अंतरंगविखैं दया होगी सोई पुरुष जीवनिकी रक्षा करैगा, अर पापी निर्दयी है सो जीवनिकी रक्षा कैसै करेगा अर ज्ञानी जीवनिनैं जुवांआदि सात विशनका शीघ्र ही त्याग करना जोग्य है, कैसे है सात व्यसन ? सकल पापनिकी तो खानि है, अर नरकके मार्गके दिखानेहारे है इन व्यसननिके त्या- गनेतैंही जीवनिका लाभ होय है, सोही नाटक समयसारविखैं कह्या है, दोहा ॥ जुवा खेलना मांसमद वेश्या विशन शिकार ॥ चोरी पर- रमणी रमण सातौं विसन निवार ॥ जातैं व्यसनाशक्त जीवनिके दया सांच आदिगुण कवहू नांही होय, तव दया अर सांच विनां मनुष्यनिके अहिंसादिक व्रत अर उत्तम क्षमादिक धर्म कैसें उत्पन्न

होय ? जैसें जुवाआदि सातव्यसनका त्याग किमा तैसैंही धर्मात्मा पुरुषनितैं अहिंसा व्रतको विशुद्धताके अर्थि सकल जगतविखैं निंदनीक जो रात्रिभोजन ताका भी त्याग करना योग्य है, जो प्राणनिको त्याग होय ता भलाहो होहू , परंतु प्राणीनिका रक्षावास्ते रात्रिभोजन तो कदाचितही नाहीं करनो, जातैं जे अग्यानी जीव रात्रिविखैं भोजन करेहैं तिनके त्रस जोवनिकी राशिके भक्षण तैं मांसभक्षणका त्याग कैसे होय ? अर दयाव्रतहूं कहातैं होय ? भावार्थ— जानैं रात्रिभोजन किया तानैं तो मांसही भक्षण किया, जातैं अन्यमत विखैं हूं, ऐसा कह्या है, "जा रात्रिविखैं अन्न तो मांस समान है, अर जल रुधिर समान है," तातैं अहिन्सादि व्रतनिको रक्षाकै अर्थि रात्रिभोजनका त्याग अवश्यहो करना, अर अनन्तातन्त जीवनिके पुंज ऐसे जे आदानैं आदिलेय कंद जिनका औषधिके निमित्त हू ग्रहण नाहीं करनां, कैसे है ? समस्त जगतविखैं निंदनीय है अर नूलकादिक काहू भक्षण नाहीं करना, ये भो अनेक जीवरासिके पुंज है, जे जीव रसनाइंद्रियके विषयके लोलुपी अनंतकाय जे आद्रकआदि कंदमुल तिनकूं भक्षण करेहै तिन जीवनिके अनंतानंत जोवरासिका भक्षण तैं दयामयीधर्म कहां है ? हे पुत्री, अथाणां अरबोर आदि फल बहुरि नवनीत कहिये लूण्यां घृत इत्यादिक जे हैं ते कीड़ा लट आदि त्रस जोवकरि भरेहैं महानिंद हैं, ते ज्ञानो जोवनिके भक्षण योग्य नाहीं है, सोई समयसार नाटक में कह्या है ।

कवित्त ।

ओरा घोलवड़ा निशिभोजन बहुबीजा बैंगन संधान।
वड़ पीपल उमर कठूमर पाकर फल जो होय अजान ॥
कंदमूल माटी विष आमिष मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अतितुच्छ तुषार चलितरस ये जिनमत बाईस बखान।

अर असंख्यात बादर सूक्ष्म जीवनिको हिंसाका कारन अनछान्या जल धर्मात्मा जीवनिके कदे भी पीयवो योग्य नाहीं है, कैसा है अनछान्या जल ? बहुत दुःख अर पाप तिनका आकर कहिये खान है, सोई प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें कह्या है।

चौपाई ।

विनछान्यो अंजुलि जलपान, इक घटितैं कीनूं जिन न्हान।
ता अवको हमनैं नहि ज्ञान, जानत है केवलि भगवान ॥

इत्यादि पूर्वे कहे अर बैंगण, मतीरा कोहला आदि बड़े फल असंख्यात त्रस जीवनिकी हिंसाके कारण धर्मात्मा जीवनिनैं अहिंसाव्रतके रक्षाके वास्ते भक्षण करवेजोग्य नाहीं है, अणुव्रती धर्मात्मा पुरुष हितकारी, प्रमाणिक अक्षरकूं लिये, सारभूत, पुण्यका मूल परजीवनिके श्रवणनिके अनिमिष्ट, अर धर्मकारक ऐसे सत्य वचन बोलैं, अर सत्पुरुषनिकी कीर्ति लोकविर्षे फैले है, अर तीन लोककी लक्ष्मी स्वयमेव प्राप्त होय है, अर विवेक कहिये भेदविज्ञान भली बुद्धीका प्रकाश होहै, बहुरि सकल लोक विषैं वचनकी प्रमाणता होहै, अर झूठ वचनका बोलवातैं बुद्धीका नाश होहै, अपजस फैले

है, अर सर्व जीवनिके अविश्वासका पात्र होहै, बहुरि राजादिकनितैं हात, पाँव, नाक, कान, जीभ आदिका छेदरूप दण्ड पावे है, अर अचौर्यव्रतके रक्षाके अर्थी बिनादिई अर मार्गमें पड़ी भूली जाती रही पराई वस्तुकूं काला नागसमान जानि ग्रहण नहीं करनो, हे पुत्रि, पर द्रव्यके चोरने तैं चोर जे हैं ते इस भवविषैं तो वध, वंधन, कर्ण नाशिका छेदनादिक दुःख पावे हैं, अर पापकर्मके उदयतैं परभवविषैं नरकादि गतीनके असह्य दुःख भोगवे है. भावार्थ—माता, पिता, पुत्र, स्त्री, वहन, भाई, सज्जन, परजन, नौकर आदि कोई भी चोरके सहाई नहीं होय है. चोर अकेला ही इस लोक परलोक संवन्धी दुःख भोगवे है, अब चौथा अणुव्रत ब्रह्मचर्य जो अपनी विवाहिता स्त्री बिना समस्त पर स्त्रियनकूं मन, वचन, कायकृत, कारित, अनुमोदनाकी शुद्धताकरि माता, बहिन, पुत्री समान देखै सो है, कुशील, परस्त्री लंपट पुरुष इस भवविषैं तो वध वंधन पीड़न हस्तकर्ण नाशिकादि छेदन अर धनका क्षय आदि दुःखनिकूं प्राप्त होय है वहुरि परभवविषैं सातवें नरक जाय है, परिग्रह प्रमाण नामा पंचम अणुव्रत को प्राप्तीके अर्थि लोभरूप वैरीका नाश करि ज्ञानी जीवनिनैं क्षेत्र आदि दशप्रकार बाह्य परिग्रहकी थोड़ी संख्या करनी, भावार्थ—जेता परिग्रहतैं अपना धर्म सधैं, परिणामनिविषैं आकुलता नाहीं होय, ममत्वका अभाव होय तेता तो अंगीकार करैं अर अवशेष परिग्रहका परित्याग करैं, हे पुत्रि, कहे जो ए पंच अणुव्रत तिनकूं धर्म अर सुखके अर्थि तूं अंगिकारकरि, ग्रहण करि, कैसे है पंच अणुव्रत ? इस पर्यायतैं देवलोक सम्बन्धी सुखनिकें

साधक है, अर परंपराय निर्वाण सुखके साधक है, जे सम्यग्दृष्टी ज्ञानी पुरुष शोभायमान सुख अर गुणनिके भंडार ऐसे जे पंच अणुव्रत तिनकूं मन, वचन कायकी शुद्धताकरि पाले हैं, ते भव्य जीव अच्युत स्वर्गपर्यंत अनुपम सुखनिकूं भोगिकरि निरंतर निराकुल सुखनिको खानि जो पंचमगति कहिये निर्वाण ताहि प्राप्त होय है, भो ज्ञानी पुरुप हो, या भांति जानिकरि सारभूत परमोत्कृष्ट स्वर्गमोक्ष सम्बन्धी सुखके कारन अर जिनेन्द्र भगवानकरि कहे ऐसे पंच अणुव्रत तिनकूं सदाकाल आचरण करो, बहुरि धर्मरूप वृक्षके मूल समान अर तीन लोक सम्बन्धी सारभूत सुखनिके देनहारे ऐसे पंच अणुव्रतनिका आचरणविना क्षणभंगुर अपनी आयुविखैं एक घटिकामात्रहू हितके अर्थी पुरुषनिनैं वृथा नाहीं गुमावनी, भावार्थ—आयु तो क्षणभंगुर है, तातैं व्रत धारणकरि आयुकूं व्यतीत करैं, सो मनुष्य भव सफल होय देवलोकके सुखपाय कर्मनिका क्षय करि निर्वाणका लाभ होय, तातैं व्रत धारणकरि मनुष्य पर्याय सफल करनो, फिर यह अवसर मिलनेका नाहीं ऐसा उपदेश है।

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्यविरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृतग्रन्थकी देशभाषामयवचनिकाविखैं नागश्रीके धर्मका लाभ वर्णन करनेवाला प्रथम सर्ग समाप्त भया।

चौपाई।

जे देहै सांचो उपदेश, तिहुजगजनबंधव परमेश।
ते सब साधु अमलगुणगेह, देहुं मोहि निजगुणधरिनेह ॥

अथानंतर सा नागसर्म ब्राह्मणको पुत्री नागश्री, सूर्यमित्रमुनीके चरणारविन्दकूं नमस्कार करि, मुनाके उपदेशतैं सम्यग्दर्शनसहित श्रावक धर्म सम्बन्धो पंच अणुव्रतनिकूं अंगोकार करती भई, व्रत-निकूं ग्रहण करि नागश्री अपने घर जानेकूं सन्मुख भई, तब अवधिज्ञानके वलतैं शुभाशुभ होनहारके जाननहारे ऐसे सूर्यमित्र मुनि नागश्रो कूं ऐसी शिक्षा देते भये, हे पुत्रि, तेरा पिता बलात्कार सर्वथा व्रतनिकूं छुरावेगा तोहू तूं मति छोरयो, कैसे है व्रत? देव-निकूं हूं दुर्लभ है, भावार्थ—देवनिके कदाकालहू व्रतनिका ग्रहण होय नाहीं, सम्यग्दृष्टो जीवनिके निरंतर वे विचार रहे है, जो हमारे देवपर्यायकी थिति कब पूर्ण होयगी तदि हम मनुष्यपर्याय पाय पञ्च महाव्रत अथवा अणुव्रतनिकूं धारैं, इहां तो अव्रतसंबन्धो महान् घोर दुःख है, अथवा चार गति चौराशीलाख जोनिविखैं भ्रमतैं देवनिके सुखतो अनंतवार भोगे, अर सम्यग्दर्शनसहित व्रतनिका धारन एक वारहू नाहीं भया, तातैं व्रतनिका पावना महान दुर्लभ है, जात व्रतधर्मके आचरण करिनेकरि ज्ञानी जाव-निनैं स्वर्गमोक्षकी संपदा, अर लोकविखैं मान्यपणा, बहुरि निर्मल जस आदि मनोवांच्छित सुख पाइए है, अर व्रतभंग संबंधी अति-पापके उदयकरि अधम नीच मनुष्य इस भवविखैं तो निंदा, क्लेश आपदाकूं भोगे है, बहुरि परभवविखैं नरक निगोद आदि दुर्गतीकूं

प्राप्त होय है, हे पुत्रि ! जो तूं पिताके हटतैं व्रतनिके धारण करवेकूं असमर्थ होवै तो इहां सायके व्रत मोकूं देइ जाइयो मोकूं सोंपेवगर अन्यथा व्रतनिकूं मति छोर दोजियो, नागश्रीने कही,हे तात समस्त जीनिके हितकारी जे तिहारे वचन तिनके अनुस्वार ही करूंगी। भावार्थ—भो मुनि जैसे तुमने कही तैसेही करूंगो, ऐसे कही मुनिनके चरनारविंदनिकूं नमस्कार करि अपने घरप्रति गमन किया, तब वै ब्राह्मणनिकी पुत्री जे नागश्रीके साथ नाग पूंजनेकूं आईथी ते नागश्रीने व्रत ग्रहणकरि गमन कियाथा ताके पहली शीघ्रही जाय या भांति निंद्य वचन कहे, भो नाग सर्म, तेरी पुत्री नागश्री दिगंबर मुनिके चरणारविंदनिकूं नमस्कार करि तिनके पास कितनेक जैनके व्रत अंगीकार किये हैं,तिन कन्यानके वचन सुणवेमात्रहोसे क्रोधरूप अग्निकरि प्रज्वलित भया है मन जाका ऐसा होयकरि नागसर्म विरामण, व्रत ग्रहणकरि अपने घर आई जो नागश्री ताहि ऐसा दुर्वचन कहताभया, हे पुत्री तैनेकुबुद्धिकरि दिगंबर मुनिकूं नमस्कार करि व्रतादि ग्रहण किया यह बड़ा विपरीत काम किया, अपनेकूं तो यज्ञकर्मादिकरि वेदविखैं कह्या अर अपने कुलक्रमतैं आया ऐसा ब्राह्मणनिका धर्मही शीघ्र अंगीकार करना योग्य है, हे भोरी, जीवनिकी दया है प्रधान जामैं ऐसा जिनेंद्रका भाख्या धर्मतैं अंगीकार किया सो धर्म ब्राह्मणनिके कुलविखैं व्रतादिकनिके पालवेकरि करवेकूं अयोग्य है, भावार्थ—जिनेंद्रका भाख्या धर्म जैनी श्रावकनिकेही करवे योग्य है, ब्राह्मणनिकूं सर्वथा अंगोकार करना जोग्य नाहीं, यांतैं हे पुत्री, मेरे हठतैं तिन व्रतनिकूं तूं छोर दे, ये व्रत स्वर्ग

मोक्षके प्राप्तीके अर्थि वा मुनिहीके योग्य है, हम ब्राह्मणतिके कदेभी करवे योग्य नाहीं है, या भांति पिताके वचन सुनि नागश्री बोली हे तात! अंगीकार किये जे व्रतादिक तिनकूं जे दुर्बुद्धी छोड़े हैं तिनको इस ही भवविखैं नीचपना निंद्यपना होय है, अर महान् पापकर्मका बंध होय है, अर परभवविखैं पापके उदयतैं चिरकाल दुर्गति विखैं भ्रमण होय है, तातैं अंगीकार किये जे मुनीके दिये सारभूत और स्वर्गमुक्तीके कारण ऐसे व्रतनिकूं आत्मीक सुखके प्राप्तीके अर्थि कदेभी नाहीं तजूं, यह वचन सुनि पापी नागसर्म महाक्रोध करि बोल्या, हे भोरी, इन व्रतनिकूं शीघ्र दी छोर दे, अर जो नाहीं छोरे है तो मेरे घरतैं निकसि जाहू, या प्रकार पिताका खोटा हठ जानिकरि अत्यन्त दुखथकी नागश्री बोली हे तात, व्रत ग्रहणकरि जब मैं घर आवने लगीं तदि मुनिनैं मोहि ऐसे कही है, जो तेरा पिता मेरे दिये व्रतनिकूं छुरावेगा तो तू इहां आयकरि व्रतनिकूं सोंपि जाइयो नागसर्मा बोल्या ऐसेही हो जो मुनीने कहा सोही करूंगा, ऐसे कही पुत्रीकूं लारे लेय मुनीकी मुखतैं निन्दा करता, दुर्वचन बोलता, व्रतनकूं सोंपवेको घरतें चाल्या नागसर्मके साथि आवती ऐसी नागश्रीनैं, काहूं जवान पुरुषकूं बंधनसैं बांधि मारवेके अर्थि ले जाय थे ताहि देखि पितातैं पूछी, हे तात यह पुरुष कैसे बंध्या है? अर यानैं कहा अन्याय किया है? तब नागसर्म बोल्या, हे पुत्रि, मैं तो नाहीं जानूं हूं परंतु कौनसा अन्यायतैं बांध्या है सो कोटवालकूं पूछैं तब पुत्रीसहित नागसर्म ब्राह्मण कोटवालकैं समीप जाय कोतवालकूं पूछी अहो कोतवाल, यह पुरुष कौन अपराध करि

बंध्याथका दुःख भोगे है ? कोटवाल बोल्या, याही चंपापुरीविखैं अठारा कोड़ दीनारका धनी देवदत्तनामा सेठ, ताके समुद्रदत्तनामा स्त्री, अर वसुदत्तनामा एकही यह पुत्र, जुआआदि सप्त व्यसनका सेवनेहारा सो आज धूर्तनामा जुवारीतैं जुवा खेलि सोव्रही लाख दीनार हारी, तब धूर्तनामा जुवारी हठ थकी शीघ्रही या दुरात्माकुं निकट अपना जीत्या धन लक्ष दीनार मांगी, तब यो निर्दयी वसुदत्त क्रोधायमान होय छुरीके प्रहारतैं धूर्तनामा जुआरीकूं मारथा, अहो नागसर्म, या वसुदत्त दुष्टनैं दोय अपराध किये, प्रथमतो जुवा खेलि पीछे धूर्तनामा जुआरीके प्राण हने, तदि राजा याका सकल धन खा मारवाकी आज्ञा दई है, तातैं यह वसुदत्त बन्धनमैं बंध्या महा घोर दुःख भोगवे है ऐसे कोतवालके वचन सुनि नागश्री बोली हे तात प्रत्यक्ष देखि हिंसाके आचरण करवे कूं इसही भवविखैं वध कहिये प्राणनिका घात, बन्धन कहिये सांकल, वेड़ी, तोप जंजीरादिकनके तीक्ष्ण बन्धन, अर कर्शन अर हात पांव कर्ण नाशिकानाशिकादिकका छेदन इत्यादि घोर दुःख पाइएहै, अर परभवविखैं जे दुःख भोगवै तिनकूं कौन कहिसकै ? इस वास्तैं मैंने मुनीके निकट हिंसाका त्याग करि अहिंसा व्रत ग्रहण कियो है, सो इस व्रतकूं कैसे छोरूं ? कैसा है अहिंसा व्रत ? तीन जगतविखैंसारभूत जे इन्द्र अहमिन्द्र नरेन्द्रआदि उच्चपद तिनका देनहारा है, तदि नागसर्म ब्राह्मण बोल्या, हे पुत्री एक यह अहिंसाव्रत तो रहो। परन्तु और व्रत सौंपवेकूं तो मुनीके निकट जांहि, तब आगैं जातैं कोउ और स्थानविखैं औंधे मुख लटकता कोई पुरुष जाके वदन-

विखैं सूलनके प्रहार करि ताकूं कोतवालके किंकर मारते थे सो देखि नागश्री अपने पिताकूं पूछी हे तात ये पुरुष ऐसे महान घोर प्रचण्ड दुःखनिकूं कैसे प्राप्त भया ? तब नागसर्मा बिरामण बोल्या हे पुत्री एक वज्रवीर्यनामा राजा चतुरङ्ग सेनासहित अङ्गदेशके बनविखैं आय मुकाम किया और अपने इष्टकी सिद्धिके अर्थ वचनालापविखैं प्रवीण और विचक्षण ऐसे अपने दूतकूं यह चंपापुरीका राजा चन्द्रवाहनके समीप भेज्या, सो दूत आय राजाकूं प्रमाण करि विनती करताभया' हे राजन्, मेरे वचन सुनो, मेरा स्वामी राजा वज्रवीर्य कुशलक्षेम पूछि तुमपैं यह आग्या करेहै कि मेरी सेवा करो, अर जो सेवा करिवो तोहि मुनासिब नाहीं है तो मोतैं युद्ध करि, अर जो युद्ध करना भो तोंहि कबुल नाहीं तो सर्वस्वकरि पूर्णभंडार चम्पापुर नगर देहु, यह वचन सुनि राजा चन्द्रवाहन बोल्या, रे दूत, जाहु जाहु !! आजही रणभूमिविखैं तेरा स्वामीका प्रताप देखिवेकूं तिष्ठू हूं, या भांति कहि दूतकूं विदाकरि चतुरङ्ग सेना सहित बलनामा सेनापतिकूं, वज्रवीर्यकूं संग्रामके अर्थि, पठाया भेज्या, सो वलनाम सेन्यापति प्रचंड पराक्रमी चंद्रवाहन राजाकी आज्ञातैं महान चतुरंग सेनासहित जाय वज्रवीर्य नृपतैं भयानक संग्रामका आरम्भ किया, कैसा है संग्राम ? कायर पुरुषनिकूं भयका दायक है, तहां दोन्यूं सेन्याके महाघोर संग्राम होतैं यह तक्षकनामा सुभट चंद्रवाहनका अंगरक्षक मरणके भयतैं भागि यहां आय चंद्रवाहन नृपकूं ऐसे झूठे वचन कहे, अहो देव, अहो राजन, राजा वज्रवीर्य संग्रामविखैं बलनामा सेन्यापतिसहित हाथी घोड़े वस्त्र आदि सारभूत वस्तु

ग्रहण करलई, यह वचन तक्षकनामा अंगरक्षक सुभटके सुनि राजा हृदयविखयैं अत्यन्त खेद खिन्न भया, अर वलनामा चंद्रवाहन भूपका सेनापति महाघोर संग्रामविखैं बलात्कार वर जोरीतैं पकडो-करि वज्रवीर्यराजाकूं दृढ़वंधनतैं जकरवंध करि चंपापुरप्रति प्रयाण किया, ता अवसरविखैं विजयकरि आया जो सेनापति ताके वादि-त्रनिके शब्द सुनि, अर सेन्याके क्षोभका आडंबर देखि यह जानीके, वज्रवीर्य राजा सेन्यासहित संग्राम करवैकूं इहां आया, तव चन्द्रवाहन नृप सेन्याकूं सजि संग्रामके अर्थि उद्यमी भया, गढकी रक्षापै इतवारी वहुत सुभटनिकूं राखि अर नगरके दरवाजे वंध करि आप हाथीपै सवार होय संग्रामके अर्थि सेन्यासहित नगरके वाहर तिष्ठ्या, वल-नामा सेन्यापति प्रणाम करि नगरके द्वार खुलाये, ता पीछे भूपेंद्र-सहित राजमंदिर आय वहु प्रणाम करि वज्रवीर्यकूं अर्पण किया, तव राजा अत्यन्त हर्षायमान होय सेनापतिकूं वड़ी संपदासहित नगर ग्राम दिये, अर वज्रवीर्यकूं छोर वस्त्राभूषण देय अमृत समान मीठे वचननिकरि संतोष उपजाय ताके देशप्रति पठाया, हे पुत्री, वज्रवीर्य नृप गये पीछे सुखसैं तिष्ठता राजाचन्द्रवाहन इस तक्षक-सुभटने पूर्व कहे जे झूट वचन तिनकूं चितार महान कोपायमान होय ताहि मारनेकूं कोतवाल प्रति ऐसो दुष्कर आज्ञा दई है, भावार्थ—या सुभटने झूठे वचन वोले तातें याकी ऐसी अवस्था भई है, यह वचन नागसर्माके मुखतैं सुनि नागश्री वोली, हे तात, जिस असत्य वचनकरि इसही भवविखैं महाघोर दुःख पाइयेहै तो मैंने असत्यवचन वोलने का अंगिकार योगीश्वरके पास किया है तांहि मैं

कैसे छोरूं ? कैसा है सत्यव्रत ? इस भवविखैं तो पूजा, सत्कार, लोकविखैं मान्यता विश्वास, यश, इत्यादि सुखनिका कारण है, और परभवविखैं स्वर्गमोक्षका दाता है, सारभूत हैं, ऐसे नागश्रीके वचन सुनि नागसर्म पुरोहित बोल्या, हे पुत्री, यह सत्यव्रत भी रहो, परन्तु और व्रत तो चालकरि जतीकूं सोंपैं।

पीछैं आगैं जातैं कोऊ और प्रदेशविखैं एक पुरुष सूलीविखैं पोया हुवा था, ताहि देखि करुनाकर नागश्रीनैं अपने पिताकूं पूछी, हे तात, यह पुरुष काहेके अर्थी निग्रह जोग्य भया है ? तब नागसर्मा बिरामण बोल्या हे पुत्री, मैंने तो ज्ञान नाहीं, तूं चाल कोटवालनैं पूछैं। या भांति समीप जाय पुत्रीके हठतैं कोटवालकूं पुछी, अहो चण्डकर्मन्, इस पुरुषनैं कहां अन्याय आचरण किया है ? तब नागसर्म के प्रश्नतैं कोटवाल बोल्या, याही चंपापुरीविखैं महाधनवान वसुदत्तनामा राजश्रेष्ठी ताके वसुमतिनामा सेठाणी तिनके रूपादिक गुणनिकरि शोभायमान वसुकांतानाम पुत्री भई एकदिन सर्पकरि डशी वसुकांता महाविकराल विषकरि आकुल मृतक समान मूर्छित भई, तब सेठने पुत्रीकूं मर गई जानि सज्जनपरयन सहित स्मसान भूमिविखैं दग्ध करवेकूं प्राप्त करी, तहां चिताविखैं मेलनेके अवसर वसुकान्ताके पुण्यके उदयतैं कोई एक वणिक् पुत्र गरुडनाभि है नाम जाका, रूपवान्, यौवनवान्, गारुडविद्याविखैं महाप्रवीण, नाना देशनविखैं विहार करतो तहां आय, वसुकांताकूं अतिरूपवान् देखि, वसुदत्त शेठकूं प्रगट याभांति कहता भया, भो श्रेष्ठिन्, जो इस पुत्रीकूं मोहि विवाहिदे तो मैं वसुकांताकूं

द्यू , तदि गरुडनाभिका स्वरूपकूं विचारि वसुदत्त शेठ ताकूं बोल्या, भद्र, मैं मेरी पुत्री तोकूं ही देऊंगा, तूं वानैं शीघ्र ही जीवाय दे, गरुडनाभि बोल्या; इस रात्रिविषैं तो हर्षसहित बड़ा जावतातैं जतनसौं चौकसकरो, प्रभात ही वसुकांताकूं निर्विष कहिये विषरहित करूंगा, तब वसुदत्त शेठ हजार हजार दीनारनकी चार पोटलि बांधि समसानविषैं वसुकांताका विमानकै समीप धारण करि मेलिकरि, चार सुभटनिकूं बुलाय पुत्रीकी रक्षाके अर्थि कहता भया, भो सुभट हो, इस बसुकांताकी बड़ी चौकसतैं बहुत सावधानीतैं चार प्रहर रात्रीपर्यंत रक्षा करो, प्रभात तुमकूं एक एक हजार दीनार द्यूंगा, यामैं कछुभी संषय नाहीं जानहू, या भांति वह चारौं सुभट हजार हजार दीनारनके लोभतैं वसुकांताका विमानकी रक्षा करते रात्रीविषैं समसानमैं खडे रहे, अर सेठ आदि समस्त जन आनंदसै अपने अपने घर गये, दूसरे दिन प्रभात ही गरुडनाभि गारुडी शीघ्र आय मंत्रसक्तीके प्रयोगादिकरि वसुकांताकूं विषरहित करी, तब वसुदत्तशेठ अति आनंदकूं प्राप्त होय करि अपनी पुत्रीकूं विवाह की, विधिकरि प्रीत सहित गरुड नाभिके अर्थि दिई. अर बहुत संपदा दिई, अथानंतर दीनारनिकी चारौं थैल्यानिके मध्य एक थैली चोरीमें गई, अर तीन थैली रही, तिनकूं देखि मीठे वचननिकरि चारौं सुभटनिकूं सेठ कहता भया विमानके समीपतैं जा सुभटनै एक थैली ग्रही तानैं तो हजार दीनार लई ही और तीन थैली हजार हजार दीनारकी हैं तिनकूं भी चारो सुभट हो, अबार तुम ग्रहण करो ये वचन सुनि चारूं ही सुभट

सेटप्रति बोल्या, हमनैं ता तुम्हारी थैली नाहीं ग्रही, ऐसे कहि करि थैली लेनेकी हामलि काहूनैं भी नाहीं भरी, तब सेठ शीघ्र ही चंद्रवाहन राजाके निकट जाय प्रगट कहता भया, हे राजन्, एक हजार दीनारकी एक थैली म्हारी चोरीमें गई, ए बचन सुनि राजा, चंडकीर्ति कोटवालकूं कहता भया, रे दुरात्मन्, रे चंडकर्मन्, मेरे समीप शीघ्रही चोरकूं ल्याय, अर जो चोरकूं नांही ल्यावैं तो तेरो मस्तक छेद देहि, ये वचन सुनि कोतवाल बोल्या, हे नाथ, जो पांच दिनके अनन्तर चोरकूं नांही अर्पण करूं तो आपकी इच्छा होय सोई करियो, ये बचन सुनि राजा चंद्रवाहन पांच दिनकी मर्याद चोर ल्यानेकी मानी, तब चंडकीर्ति कोटवाल चोरके हेरणेके अर्थि चिन्तानैं प्राप्त भया संता तिन चारों शुभटनि सहित अपने घर गया, तहां महारूपवान सुमति नामा कोटवाल की पुत्री वेश्या, पिताकूं चिंतातुर देखि पूछतो भई, कैसी है सुमति ? वेश्यातैं भी अत्यन्त प्रवीण है बुद्धि जाकी, भो तात, तुम चित्तविखैं चिन्तातुर कैसे हो ? चिन्ताका कारण मोहि कहो, मैं समस्त चिन्ताको दूर करवेकूं समर्थ हौं, तब चंडकीर्ति कहता भया, इन चारौ सुभटनिकै मध्य कोई एकने हजार दीनारकी एक थैली लिई है, अर राजा चंद्रवाहन मेरा निग्रह करे है, ऐसे चंडकीर्ति कोटवालके वचन सुनि सुमति बोली, हे तात, तुम तो चिन्तारहित निश्चिन्त रहो, मैं आजही चोरका निश्चय करि तोहि सोपोंगी, ता पीछैं कोटवाल की पुत्री सुमति तिन सुभटनिकूं भोजनादिक देय बोली, अब तुम चारौं ही पांच दिन तो इहां तिष्ठो, ऐसे कहि बंदोबस्तके स्थान-

विखैं मंचकादिक देय वचन की चातुर्यतातैं तिनके मनकूं भेदने लागी, चारू सुभटनिकूं भूमीपर बैठाय विकार सहित चेष्टा करि या भांति बोली, तुम चारनिके मध्य काहू येक पै मैं आसक्त भई हौं, परन्तु मेरे चित्तविखैं यह संशय वर्ते है, भो सुभट हो थाके निकट धरी थैलीकूं चोर कैसे चोर ले गया ? अर तहां तुम कहा कर्तव्य करते तिष्ठे थे ? यह मेरे कौतुक है, तब तिनि चारनिके मध्य एक सुभट बोल्या, हे सुमते, मैंतो इन तीनूंवूं कहिकरि पहिली रात्रिविखैं हर्षसहित वेश्याके घर गया, अर पिछली पहरमें शीघ्र ही यहां आया, तब दूजा कही मैंभी याके पीछैंहो आवेथा, अर एकली रंडीकूं छोरकरि रात्रीविखैं ही तहां आय गया, तब मोनैं आये पहली तहां कहा वृत्तांत भया सो मैं नांही जानूंहूं, कोई विश्वासघाती दुराचारी दुष्ट यह अकृत्य किया है, तब तीसरी सुभट कही हे वत्से, हे पुत्री, मैं तो मेढिका जो लिरडी ताकूं पिसित कहिये मांस करताथका वहां तिष्टैथा, तब तहां कहा वृत्तांत भया सो मैं नाहीं जानूंहूं, तब चोथा पुरुष बोल्या, मैं तो नेत्रनिकरि मुरदेकूं देखता रह्या मेरे द्रव्यविखैं कछु भी चिन्ता नहीं है भावार्थ मेरी दृष्टि तो केवल मुरदापै ही रही, धनकी मोहि खबर नहीं, या भांति चारों पुरुषनिके वचन सुनिकरि संपयसहित चोरकूं जानि वहुरि चोरके निश्चयके अर्थि ऐसे कहती भई, कैसी है सुमति ? कुटिल कहिये वक्र मायाचार सहितहै आशय कहिये अभिप्राय चित्त जाका, इस दीनारको थैली चोरी जाके विखैं तुम चारनिका तो दोष नाहीं है, भावार्थ—तुम चारनिविखैं तो थैलीका चोर कोऊ

भी नाहीं है परन्तु अब मेरे नयननिविखैं निद्रा प्रवर्ते है तातैं आलस्य निद्राका विनाशके अर्थि तुम कोई एक कथा कहो, तब सुभट बोले हे सुमते, हम तो कोऊ भी कथा नाहीं जाने है, तूही कहे, तब सुमती बोली, हे सुभट हो, तुम सुनो मैं कथा कहूंहूं।

पटनाविखैं धनदत्तनामा वैश्यके सुदामा नामा कुमारी कन्या थी, सो एक दिन अपने घरके पिछाड़ी उद्यानविखैं सरोवरमें पाव धोनेकूं पैठो हुती, तहां तुरतही ग्राहनै पांव पकड्या, तदि अति भयभीत होय धनदेव नामा अपना जीजाकूं देखिकरि बोली, हे धनदेव, इहां बरजोरीतैं ग्राह मोहि पकरे है सो तूं शीघ्रही छुराय, तब धनदेव कौतूहल हास्यकरि कही जो तू मेरा कह्या करै तो मैं तोहि छुराऊं, तब सुदामा बोली तूं कहा कहे है? धनदेव कही विवाहके दिन रात्री विखैं लग्नकाल कहिये फेराके अवसर वस्त्राभरण सहित मेरेपास आवे तो तोहि छुराऊं, अन्यथा नांहि छुराऊं, तब सुदामा बोली, जैंसे तूं कही तैसे ही करूंगी, धनदेव कन्याका वचन लेय दाहिने हाथ पकरि बलातकारैं बरजोरी तैं ग्राहथकी कन्याकूं छुरावता भया, तहां अनुक्रमतैं सुदामा विवाह के अवसरकूं प्राप्त भई, तब अपने विवाहके दिनविखैं धर्महस्त-मोचनाय कहिये वचनके छुरायवेके अर्थि धनदेवके दुकानप्रति अंधेरी रात्रीविखैं सुदामा कुमारिकानै घरतैं गमन किया, सुदामाकूं जावती देखि मार्गमें कोई चोर खड़ी राखि कहता भया, हे कन्ये, अपने आभरणादिक मोहि दे दे, कन्या बोली, आभरणसहित मोकूं कहूं जाना है, तातैं आवनेके अवसर समस्त आभूषण तोहि द्यगी,

तूं कछु भी संसंय मति जानैं, या भांति कहिकरि चोरकूं वचन देय आगैं चली, अर चोर भी अदृश्य होय कौतूहलतैं कन्याके साथि लग्यो, आगैं मार्गविखैं कोईक राक्षस कन्याकूं देखि बोल्या, भो कन्यके, तूं अपने इष्ट देवतानिकूं स्मरण करि, जातैं अबही मैं तोकूं निगलहूं, कन्या बोली, भो सुर भो राक्षस, मैं प्रतिज्ञा लेय-करि कहूं जांऊं हूं, तातैं आगमनके कालविख तेरी इच्छा होय सो करियो, ऐसे राक्षसकूं भी धर्म देय कन्या आगैं चाली, अर राक्षस भी प्रतिछन्न वृत्तिकरि कन्याके खोजां खोजां चाल्यो, आगैं चालतैं कोई एक कोतवाल कन्याकूं खडी राखो, तब कोतवालकूं भी धर्म देय सत्यवचन बोलनेवारी कन्या आगामी गमन किया, तब निर्वि-घ्नपनेंकरि समस्त आभूपणनिकरि भूपित सुदामा कन्या अपना वचंन छुरायवेके अर्थि अंधेरी रात्रिविपैं धनदेवकी दुकान पोहोंची, रात्रीविखैं एकाकी आई जो सुदामा ताहि देखि महा प्रवीण बुद्धि-मान् धनदेव, जो मन वचन काय करि परदारातैं पराङ्मुख है, सो बोल्या, हे भोरी, अबार तूं अधेरी रात्रीविखैं क्यों आई है ? भो कन्ये, लघुसाली मेरे पुत्री है, अर मेरे समस्त परदारा भगिनी कहिये बहेन समान है, भावार्थ—तूं तो लघुसाली है सो पुत्री समान है, परन्तु एक विवाहिता स्त्री टार समस्त स्त्री है सो माता, बहेन, पुत्री समान है, काहू प्रकारभी पररमणोकी वांछा नाहीं है, अर मेने तो पूर्वे हास्य कौतूहलकरि वचन कह्या था, अन्यथा ऐसे पाप बंधके कारण निंदित वचन काहेकूं उच्चारता ? जातैं पर-दारा करि सहित आसक्तपनाकूं प्राप्त भये ऐसे पापी दुराचारी

मनुष्य पाप कर्मके उदयतैं इस भवविखौं वध, बंधन, अपघात मरण आदि दु;खनिकूं पायकरि सप्तम नरक विखैं परे हैं, तहां सागरपर्यंत असंख्यात काल अति दारुण घोर दुःख सहे हैं, तातैं हे कल्याणरूपिणी, अब तूं अपने घर जाहु, ऐसी उक्तिकरि धनदेवके रहित भई सुदामा जा मार्ग विखैं गई थी ताही मार्गविखौं उलटी आई, तब वे चोर, राक्षस, कोटवाल तीनूं पुरुष सुदामाकी सांच देखि बोले, भो कन्ये, तू, महासती मोकूं तो माता समान है, ऐसे कहकरि हर्ष सहित धर्मवचन छोरे, तब वे कन्या पुण्यके उदयतै अपने घर आई, यह कथा कहकरि कोटवालकी पुत्री सुमती तिन चारौ सुभटनिकूं पूछती भई, भो सुभट हो, तिन चारू पुरुषनिके मध्य श्रेष्ठ कौन है सो मोकूं कहो, सुमतीका वचन सुनि लिरडीका चोर तिस चोरकी प्रशंसा करी, अर मांस करनेवारा सुभट तिस राक्षसकी प्रशंसा करी, मृतकको रक्षा करनेवारा सुभट कोटवालके साहसको प्रशंसा करी वेश्याका पति धनदेवकी प्रसंसा करी, या भांति चारोंका अभिप्राय जानि चोरकूं हर्षसहित निश्चयकरि तिन चारनिकूं सीख दय आप हर्षसहित निद्राका सेवन करती भई, कैसी है सुमति ? निश्चित जान्या जो चोर ताकरि वहुत हर्षसहित है अंतरंग जाका।

दूजे दिन जा दुरात्मानैं चोरकी बड़ाई करी थी, ताहि बुलाय अपनी सय्यापर बैठाय कहती भई, भो सुभट, मैं तेरे ऊपरि अनुरागिणी भई हूं, परन्तु मेरा पिता एकाकी पुरुषकरि सहित मोहि इहां नाहि रहने दे है तातैं आपा दोऊ तुरत ही देशान्तर विखैं

चालैं, ये वैन सुनिकर लिडरीका चोर सुभट कही बहुत भले है, तब सुमति बोली हे सुभट, तहां देशान्तर में भोग सामग्रीन विखै द्रव्यकरि मनोरथ सधेगा, ऐसे कहकर अपनी एक थैली दीनारनकी चोरके आगे स्थापन करि अति प्रवीणताकरि ताहि पूछती भई, एता द्रव्य तो मेरे पास था सो तोहि प्रगट दिखाय दिया; परन्तु तेरे पास भी कछु धन है कि नाहीं है ? तब चोर सुभट कही धन तो मेरे घर बहुत है, इहां तो एक हजार दीनारनकी थैली मेरे हात है, ऐसे कहिकरि ताहि समय जो अपने हाथ थैलीको छुपा रखा था सो सुमतीकूं प्रत्यक्ष दिखावता भया, तब सुमती थैली कूं लेयकरि तस्कर सुभटकूं कही तुम अपने सयनके स्थानकू जाहु, प्रातःकाल ही आपां मनोहर पांचो इन्द्रीनके विषयसुख भोगनेके अर्थि देशांतर चलेंगे, या भांति कहि करि सुभटकूं सीख देय हर्ष सहित अपने पिताकूं थैली सोंपि कोतवाल की पुत्री सुमति तीसरे दिन प्रगट चोर कूं दिखावती भई, तब कोटवाल भी चोरकूं पकरि शीघ्रही चंद्रवाहन राजाकी भेट किया।

भो नागसर्मा, राजा महाक्रोधायमान होय याके निग्रह करनेकी यह दुष्कर आज्ञा दई है, यह वचन कोटवालके मुखतैं सुनकरि पाप कर्मतैं भय भीत ऐसी प्रोहतकी पुत्री नागश्री अपने पिताकूं यह प्रगट वचन कहती भई, भो तात, जो चोरीके आचरण करि वध, बंधन, समस्त द्रव्यका नाश कुटुम्बका क्षय आदि दारुण दुःख पाइये हैं, तातैं योगीश्वरके निकट बिना दई पराई वस्तुका है त्याग जामैं अर सारभूत सुखनिकी खानि, ऐसा अचौर्यव्रत मैंने अंगिकार

किया है, ताहि कैसे छोरूं ? नागसर्मा बिरामंग बोल्या हे पुत्री, एक यह भी सारभूत उत्तम व्रत तेरे रहो, परंतु और दोय व्रत तो मुनीके दिये मुनीकूं सौंप देवैं।

या भांत जीवनिकी हिंसा करने तैं झूंठ वचन बोलनेतैं अर चोरीके करने तैं धनका नास, प्राणनिका नास, अपयसका होना आदि नानाप्रकारके दुःखनिकूं प्राप्त भये ऐसे पुरुषनिकूं मार्गविखैं अवलोकन करि नागसर्मा प्रोहितकी पुत्री दुःखनितैं भयभीत होय व्रतनिके पालन करनेविखैं अत्यन्त तत्पर भई ऐसे जानिकरि भो ज्ञानीजन हो, आत्मिक सुखके प्राप्तीके अर्थि अतिचाररहित निरंतर व्रतनकूं धारण करो, व्रतनिके धारने बिना अव्रतविखैं एक घटिका मात्र भी काल वृथा मति गमावो, ऐसा उपदेश है, सम्यक्ज्ञानी पुरुषनिकरि वंदनीक अर शुद्धात्माका अनुभवतैं स्वर्गमोक्षके साधन करनहारे अर तीन लोक मैं भव्य जीवनिकौं संसार समुद्रके तारबेविखैं अत्यन्त प्रवीण अर आप संसार समुद्रके पारकौं प्राप्त भये ऐसे जे मुनिपुंगव दिनप्रति भव्य जीवनिकूं स्वाधीन निराकुल सुखके अर्थि सारभूत पंच महाव्रत पंच अर सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक्तप इनका अमृत समान मधुरवचनकरि उपदेश देहैं ते मुनिराज धन्य है।

इत्याचार्य श्रीसकलकीर्तिविरचिते सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थकी देशभाषामय वचनिकाविखैं हिंसा झूंठ चोरी तैं उत्पन्न भये जे प्रत्यक्ष दुःख तिनकूं प्राप्त भये ऐसे जे मनुष्य तिनकी कथाका है वर्णन जा विखैं ऐसा द्वितीय सर्ग समाप्त भया।

चौपाई—दरशन ज्ञानचरण तपसार।
धरम अमोलिक मणि दातार॥
संतनिकूं सुरशिवसुख हेत।
नमूं तपोधदभाव समेत॥१॥

अथानंतर आगैं गमन करती नागश्री, मार्गविखैं कटे है कान-नाक जाका, अर पुरुपके मस्तककरि वंध्याहै कण्ठ जाका, महान् दुःखित ऐसी नारीकूं अन्य स्थानविखैं, देखि पिताकूं पूछी, हे तात, इस नारीकी ऐसी निंद्य अवस्था कौनसे अपराधकरि भई? तव नागसर्म याहो कही चंपापुरीविखैं मभस्यनामा वैश्य ताके जैनी नामा स्त्री तिनके दोय पुत्र भये, वड़ाका नाम नन्द छोटाका नाम सुनन्द, अर याही नगरीविखैं जैनीका भाई सुरसेन वैश्य ताके मदाली नामा पुत्री थी, एक दिन नन्दनामा वणिकपुत्र द्वीपांतरकूं गमन करता थका अपना सूरसेन मामाके निकट जाय ऐसे वचन कहे, हे मामा, मैं द्वीपांतरकूं जाऊंगा, सो यह महारूपशालिनी तेरी पुत्री मदाली मोकूं ही दीज्यो, अर जो तूं अन्य वणिकपुत्रकूं देवेगा तो तोहि राजाकी दुहाई है, तव सूरसेन कही, हे वत्स, कालकी मर्यादा करिकै द्वीपान्तरको जाहु तव अपने आगमनके कालकी वारह वर्षकी मर्यादा करि, नन्दनामा वणिकपुत्र द्वीपान्तर प्रति गमन किया, अर वारह वर्ष उपरान्ति छह महीने व्यतीत भये भी नंद नाहीं आया, तव सूरसेनने नंदका छोटा भाई सुनन्दकेअर्थि अपनी पुत्री मादली देनी करी, दोऊनके रमणीक मंदिरनिविखैं वड़ी विभूत-

करि विवाह सम्बन्धी उत्सव होने लगे, अर लग्नके पांच दिन अवशेष रहे तदि वणिकपुत्र नन्द द्वीपान्तरतैं आय मदालीका वृतान्त जानि मधुर वचनकरि सज्जन परिजनकूं कहता भया, अहो सज्जन परिजनहो, जो सूरसेन आदि तुम समस्त इस मादलीकूं सुनन्दके अर्थि देने करी सो छोटा भाई सुनन्दकी स्त्री मादली मेरे पुत्री समान है; तुम भलेही सुनन्दकूं परनावो, ऐसे आज्ञा देय बड़ा भाई नन्द तो फिर द्वीपान्तरकूं गया अर नन्दका छोटा भाई सुनन्द मादलीकूं बड़े भाईकी वियोगिनी जानि समस्त सज्जनपरिजनकूं प्रगट कहो, जो यह मादली बड़े भाई नन्दकी वियोगिनी मेरे माता समान है तातैं मैं याहि न परनूं, तुम अन्य वणिक्पुत्रकूं भलेही परनाओ, मेरे काहूतैंभी ईर्षा नाहीं है, या भांति नन्द सुनन्द दोऊ भाईनकरि तजी ऐसो मादली कुंवारीही यौवनकूं पाय अपने घर विखैं कुबुद्धी नागचन्द्रनामा वैश्य रहै ताके बारह प्राणप्रिया अर बारह कोटि दीनारका धनी सो पापी दुराचारी पापकर्मके उदयतैं पापकर्मके उदयकरि कुंवारी मादली विखैं अति आसक्त भया, घने दिन वा दुराचारीको व्यभिचार गुप्त चलतोथो सो स्वयमेव प्रगट हो गयो. अहो नीच पुरुषनिका छिप्या हुआ महान् पाप पृथ्वीविखैं प्रगट हो जाय है, भावार्थ—नीच पुरुषके अपने मनमें यह विचार रहेहै कि मेरा अकृत्य कोई भी नहीं जानेंगे, परन्तु पापकर्मके उदयकरि स्वयमेव प्रगट होजायहै, सो अत्यन्त पापकर्मके उदयकरि समस्त लोकनिके कहनेतैं दुराचारीका व्यभिचार नगरमैं विख्यात भया, यह पापी दुराचारी नागचन्द्र कुंवारी मदालीविखैं आसक्त

भया निरन्तर तिष्ठेहै, ऐसे सुन चंडकर्मा कोटवाल तिनके कुकर्मको परीक्षाकरि दोऊ अनाचारीकूं पकरे, तव राजाकी आज्ञातैं वध वंधन अंगछेदन प्राणहरण आदि घोर दुःखनिकूं यह दोऊ मदाली नागचन्द्र प्राप्त भये हैं, यह वचन पिताके सुनि नागश्री बोली, हे तात, जा शीलव्रतविना इस भवविखैं ऐसा घोर क्लेश पाइयेहै तातैं महान् पुरुषनिके समीप मैंने शीलव्रत अङ्गीकार किया है सो शीलव्रत कैसे छोरिये ? कैसाहै शीलव्रत ? समस्त दोषनिकरि रहित निकलंक है अर तीन जगतविखैं पूज्य है, भावार्थ—शीलवान् स्त्री पुरुषनिके चरणकमलकूं इन्द्र नरेन्द्र नागेन्द्रादि समस्त देव मनुष्य निरन्तर पुजेहै, नागसर्मा कही, हे पुत्री, तेतैं सारभूत यह शीलव्रत भी रहो परन्तु और एक व्रत तो मुनीके पास सोंपनेकूं चालै।

तहांतैं आगैं आवतैं मार्गविखैं कोटवालके किंकरनिकरि मारवेकूं प्राप्त किया अर पांवतैं लेय कंठ परयन्त दृढ़ वन्धन करि वंध्या ऐसा जो कोऊ एक पुरुष तांहि देखि नागश्री अपने पिताकूं पूछी हे तात, यह दृढ़ वन्धनतैं वंध्या पुरुष कौनहै ? अर कौनसे निंद्यकर्म करि ऐसी घोर दुःखकी अवस्थाकूं प्राप्त भयाहै सो मोहि कहो, नागसर्मा वोल्या, पुत्री, यह महालोभी अर क्षीरभोजी ऐसा वीरपूर्ण नामा मनुष्य नृपके पट्ट घोरेनके निमित्त घांसकी रक्षा करता थका एक दिन घांसके बीडविखैं प्रवेश किया, अर काहूका गोधन वहां था सो लायकरि राजाकूं नजर किया, तव राजा हर्षायमान होयकरि कही, यह गोधन तूहि ग्रहण करि, सो वा गोधनकूं ग्रहणकरि पापकर्मके उदयतैं याने अति लोभ ग्रहण किया, राजाने मोकूं यह वर

दियाहै जो मेरे देशविखैं श्रेष्ठ गोधनहै ताहि तूं ग्रहण करि, ऐसे कहिकरि देशके समस्त लोकनिके श्रेष्ठ गोधन गृहणकरि अति लोभाकुल भया संता पट्टराणीकी भैंसनिकूं गृहणकरि, तहा महादेवीनै या दुराचारीका सकल देशका गोधन गृहण आदि अपनी महिषीनका गृहण करणापर्यन्त कुलोभसम्बन्धो दुराचारीका समस्त वर्णन चन्द्रबाहनप्रति निवेदन किया तब राजा महा क्रोधायमान होय अत्यन्त लोभतैं संचय किया जो पापकर्म ताके उदयके निमित्ततैं अतिलोभी इस पापीके मारनेकी आज्ञा शीघ्रही कोटवालप्रति दईहै, यह वचन पिताके सुन नागश्री बोली, हे तात, परिगृहके लोभतैं लोभी जीवनिनैं इस भवबिखैं ऐसे घोर दुःख पाइयेहै, तो लोभरूप वैरीके बिनाशके अर्थि दिगम्बर मुनीके समीप परिगृहका प्रमाण किया है तातैं इस व्रतकूं मैं मरण होते भी तजूं नाहीं, नागसर्मा बोल्या, हे पुत्री, यह भी सारभूतव्रत तेरे रहो, परन्तु जायकरि वा दिगम्बर मुनीका तिरस्कारकरि आपां दोऊ शीघ्र ही आजावेंगे, ऐसे कहिकरि नागसर्मा ब्राह्मण नागश्रीसहित बनमैं जाय मुनि पुंगवकूं देखि दूरही खरारहि या भांति कठोर वचननिकरि तिरस्कार करता भया, हे दिगम्बर तूं मेरी पुत्री नागश्रीकूं दया आदि पंच प्रकारके व्रत कैसे दिये ? हमारे कुलविखैं ब्रह्मा, विष्णु महेशकरि कहे प्रदोषादिक व्रत प्रसिद्ध है, अरे दिगम्बर, अरे मोहि कह तो सही; ब्राह्मणनिकी कन्याको व्रत देनेका अधिकार तेरा कहां है ? यह विचार नीकैं करि, भावार्थ—हम राजमान्य उत्तम ब्रह्मण है, सबनिके गुरु हैं, हमतै वड़ा ऐसा कौन है जो हमकूं वा हमारे

पुत्रादिकक्रूं व्रत ग्रहण करनेकी शिक्षा देवैं ? तब जोगीश्वर नाग-श्रीके हितके अर्थि मधुर सुरतैं ब्राह्मणनकूं कहते भये, कैसे है जोगीश्वर ? आगामी कालसम्बन्धी लाभ अलाभ सुख दुःखादिकनिके ग्याता है, भो ब्राह्मण, भो नागसर्म, यह नागश्री मेरी पुत्री है, मैंने सम्यक प्रकार विचार करि पंच अणुव्रत दिए है, इहां तेरा कहाँ विगार भया ? कैसेहैं पंच अणुव्रत ? दया है मूल जिनका अर धर्मके वीज है, सूर्यमित्र मुनिराजके वचनके सुनवे मात्रतैं महा-क्रोधकूं प्राप्त होय करि नागसर्मा विरामण कहता भया, भोमुने, यह नागश्री तेरी पुत्री कैसी होय ? भावार्थ—नागश्री तो प्रगटपणें प्रसिद्ध मेरी पुत्री है, त्रिदेवीके गर्भतैं उपजी है, व्रतहीके देनेकरि तूं तेरी कैसे कहे है ? मुनि वोले हे ब्राह्मण यह नागश्री हमारी पुत्री अवश्य है यामैं कछु भी संशय नहीं है, अर तेरे संशय कहां है ? जातैं मैं असत्य नहीं कहूं हूं, नागश्री समभावकूं प्राप्त भई व्रतनिके पालवेविखैं तत्पर, मुनिके चरणकमलनिकूं प्रणाम करि, सूर्य-मित्र मुनीके चरणारविन्दनिके समीप तिष्ठी, तब नागसर्मा अत्यन्त क्रोध करि वेग ही चंद्रवाहन नृपके समीप जाय अनेक वचननिकरि या भांति पुकारकी विज्ञप्ति करता भया, भो देव, एक दिगंवर मुनि मेरी पुत्री नागश्रीकूं असत्य वचन तैं अपनी कहकरि वला-त्कार वरजोरी तैं ग्रहण करे है, तासमय नागसर्मा प्रोहितकरि कहे ऐसे असंभवी वचन तिनकरि सभानिवासी समस्त लोकनिके चित्त विखैं वडा आश्चर्य भया, अर राजा चंद्रवाहन भी नागसर्मा प्रोहित के वचन सुनकरि अत्यन्त आश्चर्यकूं प्राप्त होय अपने चित्तविखैं

यह विचार करता भया, कैसा है राजा ? जोग्य अजोग्य संभाव्य असंभाव्यके विचारविखैं अत्यन्त प्रवीन है, बडी अचरजकी बात है जो कदाचित मेरुगिरि चलायमान होय अर अग्नि शीतल होय तो होहू, परन्तु जैनके जती असत्य वचन कदाकाल भी नाहीं कहैं भावार्थ—निन्याणवै हजार जोजन ऊंचा अर हजार जोजनकी जाकी चित्रापृथ्वीविखैं जड है, ऐसा मेरुगिरि अनादि कालतैं कदे भी चलायमान न भया, सो तो कोऊ दैवकी विपरीततातैं कदाचित चलायमान हो जाय, अर अग्नि भी अनादितैं ऊष्ण है कदे भी शीतल भई नाहीं, सो दैवयोगतैं उष्ण स्वभावकूं छांडि शीतल हो जाय, परन्तु दिगंबर मुनि असत्य वचन कदे भी न कहैं जे निर्मोही जैनके जती वाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रहका त्याग किया तिन जतीश्वरनिके झूंठ वचन करि पृथ्वीविखैं कहां साध्य है ? कछू भी साधने योग्य नाहीं अर नागश्री अब इस नागसर्मा विरामणकी पुत्री है सो सर्वलोक विखैं विख्यात है; परन्तु इहां कछू कारण विशेष है तांहि मैं नहि जानूं हूं या भांति राजा चंद्र-वाहन विचारि करि बहुत लोकनिसहित नागसर्मा नागश्री संबंधी संशयका विनाशके अर्थि सूर्यमित्र मुनिराज समीप गया, अर केई पुरवाशी धर्मात्मा जैनी श्रावक धर्मके अर्थि परिवार सहित सूर्यमित्र मुनिकी वंदनाकूं वनमें गये, केई लोक या विरामण सूर्यमित्र मुनि अर नागसर्मा प्रोहितके जो नागश्री संबंधी विवाद ताहि सुनवेकूं गये, बहुरि केई जन बिना प्रयोजन कौतिक देखवेकूं ही वनमें गये, तहां वनविखैं प्राशुक शिलापर विराजमान अर चंद्रमासमान कांति

युक्त है मूर्ति जाकी, रागद्वेप रहित निर्विकार शांत मुद्राके धारक षटकाइक जीवनिके दयाल, पंचमहाव्रतके परिपालक, मेरु समान थिरतावान ऐसे जे सूर्यमित्र मुनिराज जिनकू देखि राजा चंद्रवाहन पंचांग नमस्कार करि अमृत समान मधुर वचन कहि या भांति पूछता भया।

भो स्वामिन् कदाचित दैवयोगतैं समुद्र अपनी मर्यादाकूं उल्लंघो, अर कुलाचलनिकरिसहित भूपोट चलायमान होय तो होहू, तथापि सत्यवादी निर्मोही जतीनके मुखसैं जैसे तैसे भी वचन कोई काल विखैंभी चलायमान नाहीं होय है, ऐसे हृदय विषैं नीकै जानूहूं, तौभी हे प्रभो, तीन जगतके नायक, मैं मनका संदेहका हानीके अर्थ तुमकूं कछुएक पूछवेका इच्छुक हूं, भो देव आपके पास बैंठो यह रूपवान नागश्री कौनकी पुत्रो है सो आप मोहि सांचि कहो, कैसे हो तुम ? सत्यवचनरूप किरणनिकरि संदेहरूप तिमिरके नाश करवेकूं भानुसमान हो, तब समस्त सभाजनकूं तिष्ठतां राजाकूं सूर्यमित्र मुनिराज प्रकट वचन कहते भये, भो राजन् यह नागश्री मेरी पुत्री है, यह वचन सूर्यमित्र मुनिराजके सुनि नागसर्मा बिरामण लाल नेत्रकरि करता भया, भो राजन्, मेरी भार्या त्रिदेवी नागका आराधन करि अर बड़ी भक्तिथकी पूजन करि नागश्री नामा कन्याकूं प्राप्त की सो यह वार्ता समस्त नगर विखैं प्रसिद्ध है अर यह आपके पास बैठे समस्त पुरजन अथवा सज्जन परिजन कहा नाहीं जाने है ? अब इस ब्रह्मचारीकी यह नागश्री कैसे पुत्री भई या विचार विखैं सकल

परिजन सहित नीकैं चित्त धारण करो, तब मुनिराज बोले हे राजन् जो यह नागश्री इस नागसर्माकी पुत्री है तो नागसर्मा नागश्रीकूं कछु विद्या भी पढाई है कि नाहीं ? व्याकरण, छन्द, अलंकार, नाममाला, नाटक, राजनीति, कथा, पुराणादिक, लौकिक चमत्कारी शास्त्र, अर आचार, गणित, न्याय आदि अध्यात्म-शास्त्र शिक्षा विवेक धर्मादिकके सिद्धीके अर्थि अर अज्ञानके हानि-के अर्थि समस्त जन अपने पुत्रादिकूं पढावे है, याने कहा पढाया है ? तब नागसर्मा बोल्या मैंने तो कछु भी शास्त्र नागश्रीकूं नाहि पढाया, तब मुनि बोले तूंनें याकूं कछु भी शास्त्र नाही पढाया है तो यह तेरी पुत्री कैसे होय ? भावार्थ—जो शास्त्र पढावे है तिनहीके पुत्रपुत्री होते हैं, जातैं नागश्रीकूं हमने शास्त्र पढाया है तातैं यह नागश्री हमारी पुत्री है. फिर नागसर्मा बोल्या भो योगिन तैंनें नागश्रीकूं कहा शास्त्र पढाया हैं सो मोहि आदरथकी कह, तब सूर्यमित्र मुनिराज प्रगट कहते भये मेरे पढ़ायवे करि यह पुत्री नागश्री अनेक श्रुतसागरके पारकूं प्राप्त भई है, यामैं कछु भी संशय नाहीं, यह वचन मुनिराजके सुनि सकल सभाजन सब अत्यन्त अचरजकूं प्राप्त भये, तब राजा चन्द्रवाहन हात जोर नमस्कार करि या भांति सूर्यमित्र मुनिराजकूं पूछता भया, कैसा है राजा ? आश्चर्यकरि सहित है मन जाका, भो मुनिराज जो या कन्याकूं आप शास्त्र पढाया है तो पापके हानिके अर्थ या कन्याकी परिक्षा दिवावो, तब योगीश्वर विस्मयकारिणी वाणी करि श्रेष्ठ वचन कहते भये, हे राजन् इहांही मैं शास्त्रनिकी परीक्षा दिवाउहूं, या भांति कह

करि पंडितनकी सभाके मध्य नागश्रीके मस्तक परि दहणा हाथ मेलि सूर्यमित्र मुनिराज दिव्यवाणी करि प्रगट कहते भये, भो वायुभूत, राजग्रह नगरविखैं मैं सूर्यमित्र तोकूं जे बहुत शास्त्र पढाए थे तिन सकल शास्त्रनिकी नृप चन्द्रवाहन आदि समस्त पंडितनकूं अब परीक्षा देहु, जाकरि इनका संशय दूर होय, या भांति सूर्यमित्र मुनिराजके कहिवेथकी नागश्री दिव्यवाणीकर सरस्वतीसमान अनेक शास्त्रनिके अर्थ प्रगट कहवेकूं प्रारंभ करती भई, जो कोऊ पंडित जिस शास्त्रका जैसा स्थलका तिह वाणी करि नागश्री प्रकट उत्तर देवे है, भावार्थ—जिनवाणीके चार अनुयोग है, जिनविखैं काहूनैं प्रथमानुयोगका स्वरूप पूछा, तब नागश्रोने कही, जा विखैं तीर्थंकर आदि त्रेसठ शलाका पुरुपनिके पुराण अर मोक्षगामी महत पुरुपनिके चरित्रनिकी भवावलीसहित पुण्यपापके फलका सब विस्तार कथन होय सो प्रथमानुयोग है, काहूने पूछो करुणानुयोगका स्वरूप कहा है ? नागश्रीने कही जाविखैं गुणस्थान आदि वीस प्ररूपणाका अर ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मनिका वंध उदय उदीर्णा अर सत्ताका अर तीनूं योगनिके द्वारे कर्म नोकर्मके निमित्तभूत समय समय पुद्गल द्रव्यके आगमनका अर औपशमिक आदि पंच भावनिका बहुरि तीन लोकके संस्थानका अर इकईस भेद संख्या प्रमाणका आठ भेद उपमा प्रमाणका अर इन प्रमाणनिके विशेप चौदह धारा आदि अनेक धारानिका सविस्तर वर्णन होय सो करुणानुयोग है, काहूनैं कही चरणानुयोगका कहा स्वरूप है ? नागश्री ने उत्तर दिया, जाविखैं अठाईस मूलगुण, चौरासी लाख उत्तर गुण

अठारह हजार शीलके भेद, पाँच प्रकार चारित्र अर दीक्षा शिक्षा प्रायश्चित्तादि देनेका विधान स्वरूप मुनीके आचारका; अर सम्यक्तादि आठ मूलगुण, ग्यारह प्रतिमारूप श्रावक धर्मका सविस्तार वर्णन होय सो चरणानुयोग है, वहुरि काहूनैं द्रव्यानुयोगका कथन पूछ्या, तव नागश्रीने उत्तर दिया कि, जाविखैं षटद्रव्य, सप्त तत्व नव पदार्थ, पंचास्तिकाय इनका अर प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण वहुरि प्रमाणनिके एक देशरूप नैगमादि सप्त नयका अर सप्त भंगनि करि चार निक्षेपनका वस्तुका यथावत स्वरूप साधनेका, वहुरि बौद्धादिकनिकरि कल्पना किये छह प्रमाण, तहां बौद्धनिके प्रत्यक्ष अनुमान दोय प्रमाण, अर सांख्यके प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम ये तीन प्रमाण वहुरि नैयायिकके प्रत्यक्ष अनुमान, आगम, उपमा, ए चार प्रमाण, अर नैयायिकनिके दूसरे मतविखैं, प्रत्यक्ष. अनुमान, आगम, उपमा, अर्थापत्ति ए पांच प्रमाण वहुरि जैनीके प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमा, अर्थापत्ति, अभाव यह छह प्रमाण इनके निराकरणका अर नयनिक्षेपनिका प्रचार करि रहित केवल निज सुद्धात्मस्वरूप निज स्वभावके अनुभवका सविस्तार वर्णन होय सो द्रव्यानुयोग है, ऐसे चारौं अनुयोगनिके स्वरूप अर तिन अनुयोगनिके अधिकार, वहुरि अधिकारनिविखैं अवांतर अधिकार, अर सुखमा दुखमा आदि दुखमा दुखमा पर्यन्त षटकालनिकी स्थितीका, अर तीन कालविखैं जीवनिकी जघन्य उत्कृष्ट आयु वहुरि शरीरकी अवगाहना, शरीरके वर्ण, अर सुख, दुख, वल, वीर्यादिकनिकी हानि वृद्धिका स्वरूप आदि समस्त प्रश्नके अनुसार

उत्तररूप वचन नागश्रीनैं प्रगट कहे, या भांति नागश्रीके मुखकरि श्रुताध्ययन संबंधी परीक्षा दिवायवेतैं समस्त ज्ञानीजननिकै हृदयविखैं अत्यन्त आश्चर्य भया तब राजा चन्द्रवाहन सूर्यमित्र मुनिराजकूं नमस्कार करि प्रगट श्रेष्ठ वचन कहता भया, हे नाथ यह नागश्री सर्वथा तुमारी ही पुत्री है, नागसर्मा विरामणकी नाहीं, परन्तु मेरे वा और सज्जन परजननिके चित्तविखैं एक कौतुकरूप संदेह वर्तें हैं, हे प्रभो, परीक्षा देनेके अर्थि तो नागश्रीके सिरपै हात मेलि वायुभूतका नाम उच्चारण किया अर श्रुतकी परीक्षा वायुभूतके नामकरि नागश्रीके मुखतैं दिवाई सो यह समस्त लोकनिके बड़ा कौतिक है, तब राजाके प्रश्नतैं फिर सूर्यमित्र मुनि बोले, भो राजन; जो भवान्तरविखैं वायुभूत था सोही निश्चयकरि यहां नागश्री भई है, यह वचन सुनकरि उपज्या है आश्चर्य जाके ऐसा राजा चंद्रवाहन हाथ जोर सिर नवाय सूर्यमित्र मुनिराजकूं नमस्कार करि अमृतसमान कोमल वाणीकरि प्रर्थना करता भया भो भगवन् , हम सबनिपै कृपा करि नागश्री अर वायुभूतसंबंधी पूर्व भवनिका दिव्य वाणी करि उपदेश करो याभांति चंद्रवाहनके प्रश्नकी सूर्यमित्र मुनिराज भव्य जीवनिका हितके सिद्धिके अर्थि अर सकल जीवनिके उपकारके अर्थि वहुरि धर्मके वृद्धीके अर्थि पूरब भव कहते भये।

भो राजन, धर्म अर धर्मके फलविखैं प्रीतकी बढावनहारी नागश्रीकी कथा अर वायुभूतके भव विखैं हमारा संबंध कारण, वहुरि पुण्यपापके उपार्जनिकरि अनुभव किये भवांतरविखैं सुख दुःख

आदि समस्त कथन तोहि कहूंहूं, सो तूं आपना चित्तकूं एकाग्र करि सकल सभाजन करि सहित श्रवण करि, महान पापके उपार्जनतैं नागश्रीके जीवनैं भवावलीविखैं नाना प्रकार दुःख भोगे, अर अधकी करनहारी अनेक दुर्गति पाई, वहुरि व्रत धारण करि संचय किया जो पुण्यका लेश ताके वसतैं नागसर्मा बिरामणके यह सती नागश्री नामा पुत्री भई सो समस्त संवंध प्रगटपणे करि कहूंहूं, ताहि अहो भव्य जीव हो, तुम एकाग्र चित्तकरि सुनो, अनुपम गुणनिके समुद्र अर साक्षात धर्मका स्वरूपके दिखायवेविखैं दीपकसमान पंच महाव्रतरूप आभूपणके धरनहारे स्वर्गमुक्तिके कारण इन्द्र नरेन्द्र नागद्रनिकरि पूजनीक वहुरि कर्मरूप वैरीनके जीतनहारे पांच् इन्द्रियनके विपयतैं पराङ्मुख ऐसे जे परमपूज्य पंच परमगुरु अर्हंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सकलसाधू, जिनकूं मैं नमस्कार करूं हूं यहां सकलकीर्ति मुनिराजनैं तीजा अधिकारका अंतविखैं पंचपरमेष्टीनकूं स्तवनरूप अंतमंगल किया है, ऐसा भाव है।

इत्याचार्य सकलकीर्तिविरचित सुकुमालचरित्र संस्कृत ग्रन्थ ताकी देशभापामय वचनिकाविखैं कुशील परिग्रहके संवंधकरि जीवनिके प्रत्यक्ष दुःख देखनेका अर नागश्री संवंधी भवांतरके प्रश्नका है वर्णन जामैं ऐसा तृतिय अधिकार समाप्त भया।

चौपाई ।

अर्हंत सिद्ध सूर उवझाय, सकल साधुके प्रणमूं पाय
जिननैं राग रोष निरजया, तेमुज निजगुणद्यो करदया

अथानन्तर याही जम्बूद्वीपविखैं भरतक्षेत्र वत्स देश कौसंबी नगरी ताका राजा अतिबल ताके प्राणनिहूंतैं प्यारी मनोहरी नामा पटराणी, अर सकल शास्त्रनिका ग्याता सोमसर्म बिरामण मन्त्री, ताके कास्यपी नामा बिरामणी तिनके दोय पुत्र थे बड़ा अग्निभूत छोटा वायुभूत, दोऊ भाई बालपणेतैं पिताके अति लाडले यथेच्छ क्रीड़ा करते थे, बहुत उपायकरि पितानैं पढाये तोहू नाहीं पढ़े केवल मूर्ख ही रहे, कदेक पापके उदय करि तिनका पिता सोमसर्म परलोक गया, तब राजा अतिबल विना विचारं अग्निभूत वायुभूतकूं प्रोहित पद दिया, याभांति वे दोऊ भाई सोमसर्मके पुत्र शास्त्रके ज्ञानकरि रहित विषयसुख भोगते जो लौं तिष्ठे थे तो लौं अनेक देशनिमैं भ्रमण करता अर तर्कशास्त्रके विवादकरि अनेक वादीनके वादका मदकूं दूर करता ऐसा एक विजयजिव्हनामा वादी आयकरि वादीनतैं वाद करनेके अर्थि राजद्वारपै वादपत्र खड़ा किया, इहां वाद करनेका अधिकार केवल पुरोहितका है अन्यका नाहीं यह विचार कर अन्य वादीननैं वादपत्र नाहीं ग्रहण किया, तब राजा अतिबलन तिन दोऊ भाईनकूं यह आज्ञा दई, भो द्विजपुत्रहो, तुम अपनी बुद्धिकरि इस वादीकूं वादपत्रका अच्छी तरह उत्तर देहु, तब वे अग्निभूत वायुभूत दोऊ भाई तिस वादपत्रकूं लेय शीघ्रही फार डारया,

तब राजा तिन दोऊभाईनकूं बड़े मूर्ख जानि अनेक दुर्वचनतैं अपमान करि तिनका दायादार जो सामिल बिरामण ताके अर्थि शीघ्र ही प्रोहितका पद दिया, तब वे दोऊ भाई मानभंगके दुखकरि हृदयविखैं अत्यन्त खेदखिन्न अर नष्ट भई है आजोवका जिनकी ते अपने घरविखैं याप्रकार विचार करते भए, अहो आप मन्दभागीहैं, पिता पढ़ाये तो भी पापके उदयकरि नाहीं पढ़ा, कुमार्गमें लीन अतिमूर्खही रहे, पुरुषनिके ज्ञानरूप नेत्र विना धर्मादिकनिकी परीक्षा कहां ? अर ज्ञानबिना लोकमें मान्यता कैसे होय ? वहुरि परलोकविखैं सुख कैसे होय ? जिन जीवनिनैं गुरुके निकट कल्याणका दायक समस्त तत्वनिका प्रकाशक ज्ञानरूप नेत्र नाहीं पाया ते पुरुष इस लोकविखैं आंधेही हैं, जे दुर्बुद्धी तात मात गुरुजनादिककी शिक्षा अर हितोपदेशादिक नांही मानेहैं तिन पापी जोवनिके दोऊलोक बिगरेहैं, ज्ञानाभ्यासकरि निर्मल ज्ञानकी उत्पत्ति होयहै ज्ञानाभ्यास करिकैंही सत्पुरुषनिके मोक्षका लाभ होय है, याभांति बिचारकरि वे दोऊ भाई अग्निभूत वायुभूत श्रुतज्ञानके पढ़नेके अर्थि देशान्तर जानेकूं शीघ्र उद्यमी भये, तब तिनकी माता कास्यपी तिनका विद्याभ्यास विखैं अत्यन्त आग्रह जानि हितके अर्थी स्वकीय पुत्रनिकूं याभांत कहती भई, राजग्रहनगर विखैं राजा सुवलके सुप्रभा नामा पटराणी है, अर म्हारो भाई सूर्यमित्र प्रोहित है, कैसाहै सूर्यमित्र ? ज्ञान विज्ञानकरि सहित है, अर अति प्रवीण सकल पंडितविखैं अगवाणी है, वहुरि तुमारा मामा है, सो राजग्रहविखैं विद्यमान है, जो तुम दोऊनके विद्याध्ययनविखैं आग्रहै तो तुम दोऊ शीघ्रही

जायकरि सूर्यमित्रके समीप विद्याध्ययन करो, याभांति माताके बचनकरि वे दोऊ बिरामण विद्याकेअर्थि कौसम्बीतैं निकसि अनुक्रमतैं राजग्रह नगरकूं प्राप्तभए, तहां सूर्यमित्र द्विजोत्तमकूं मस्तक नमाय करि नमस्कार करि या भांति अमृत समान बचन कहते भए हे मामा ! पूर्वैं पितानैं हठकरि विद्या पढ़ाई तोहू हम कछू नांही पढ़े, केवल घरविखैं मूर्खही रहे, अब पिताकूं मरे पोछे राजा अतिबलनैं हमारा प्रोहितपद सोमिल बिरामणकूं दिया। हम पदभ्रष्ट भए, अर आजीविकातैंभी रहितभए' तदि मातानैं इहां तेरेपास बहुतसास्त्र पढ़नेकूं हमकूं भेजेहैं अर तुम हमारे हितकारीहो, याभांति जानिकरि तुम हमकूं शास्त्र पढ़ाओ, जानैं नष्टभया ऐसा जो पुरोहित पद सो शास्त्राभ्यासतैं हमारे फिर हो जायगा, यह बचन सुनिकरि बुद्धिवान सूर्यमित्र अपने चित्तविखैं याभांति विचार करता भया, अहो ये दोऊ भाई यथेष्ट खानपानादिके लोभतैं पिताके पास विद्या नाहीं पढ़े, अर जो मैं भी इनकूं यथेच्छ भोजन द्यूंगा तो ये दोऊ शैलानी हो जांयगे, रञ्चमात्र भी विद्याध्ययन नांहि करेंगे, अर विद्याध्ययन विना इनके कार्यकी सिद्धी नहीं होगी, याभांति विचार करि सूर्यमित्र प्रोहित प्रगट कहता भया, अहो द्विजपुत्रहो, मेरे वहिण नाहीं तातैं तुम दोऊ विद्याहीण भांणजे कहांतैं भए ? भावार्थ—जातैं वहिणके होतैं भाणजेका होना संभव, वहिण विना तुम भाणजे कहांतैं भए ? तातैं तुमारी माता मेरी वहिण नाहीं, अर तुम मेरे भाणजे नाहीं, अर जो तुम अन्य ब्राह्मणनिके घर भिक्षावृत्तितैं भोजनकरि इहां अध्ययन करो तो विद्या पढ़ायद्युं जो तुम विद्याके अर्थी हो तो

मेरा कहना करो, अन्यथा मैं विद्या नहीं पढ़ाऊंगा, ऐसे कहतें वे दोऊ भाई बोले भो सूर्यमित्र उपाध्याय, तुमनैं जैसे कही तैसे ही करगे, याभांति कहकर सूर्यमित्रके समीप बड़े आदरतैं विद्याध्ययन करनेका प्रारम्भ करते भए, आलस्य रहित विद्या वे दोऊ विरामणके पुत्र अनुक्रमतै गिणतीके दिननिकरि अनेक शास्त्रनिकूं पढ़ि महान प्रवीण पंडित भए, अनेक शास्त्रादिका अध्ययनकरि वह दोऊ भाई अपने घर आनेकूं उद्यमी भए, तब सूर्यमित्र तिनकूं वस्त्राभरण देय हर्षकरि ऐसे कहता भया, भो सोमसर्म विरामणके नन्दन अग्नि-भूत वायुभूत हो, मैं तुमारा निश्चयतैं हितकारी मामा हूं जो इहां तुमकूं सोमसर्मकी नाई यथेच्छ रमणीक खानपानादि द्यूंगो तो यह पूर्ववत कोतुकी विषयासक्त भए थके विद्याध्ययन नाहीं करेंगे, मूर्ख रहजायंगे, यह विचारकरि मैंने विद्याध्ययनके सिद्धकेअर्थि भिक्षावृत्तितैं तुमकूं दुःखित किए, कैसाहौं मैं ? तुम दोऊनका हितका वांछक हूं, यह वचन सूर्यमित्रके सुनकरि अतिहर्षायमान होय बड़ा भाई अग्निभूत सूर्यमित्रको प्रशंसा करता भया, भो बुद्धिसागर सूर्यमित्र, तुमतो हमारे पिता समान दूजा हितकारी पिता है, तुमनैं ज्ञानदानतैं इहां हमारा पंथ हितकारी अनुष्ठान किया, अर यह मनुष्यजन्म सफल किया, बहुरि जीवनेका उपाय दिया, विद्यादान सिवाय और दान श्रेष्ठ नाहीं है, अर विद्यादानके दातार सिवाय पृथ्वीविखैं और कोई श्रेष्ठ दातार नाहीं है, जाकारणतैं जे कृतघ्नी मूर्ख विद्यादानके दातार जे उपाध्याय जिनका किया कल्याणका कारण उपकार इहां नाहीं मानेहैं तिन पापीनकी समस्त विद्या तो पापतैं नष्ट होयहै अर

मूर्खपनाकी प्राप्ति होयहै, वहुरि परभवविखैं नरकादि कुगति होयहै, तासमय दुराचारी वायुभूत सूर्यमित्र गुरूपै कोपायमान होयकरि अपनी दुर्गतीकी करणहारी गुरूकी बड़ी भांति निन्दा करता भया रे सूर्यमित्र ! रे अधम ! रे दरिद्रो ! तूं चाण्डाल समान मामा है, रे दुराचारी ! बलात्कारैं घरघर भिक्षा मंगाय हमकूं विद्या पढ़ाई, इहां आचार्य कहेहै, अहो भव्यजीव हो, देखो एक माताका उदरतैं उत्पन्न भए जे अग्निभूत वायुभूत दोऊ भाई तिनविखैं महान अंतर है, जातैं अग्निभूत तो गुरूको प्रशंसा करी, अर वायुभूत गुरूकी निन्दा करी, तातैं इहां जानिएहै प्राणीनके कर्मनिकी गति विचित्रहै, पीछे दोऊ भाई राजग्रह नगरतैं कौसम्बोपुर आय राजा अतिवलकूं आशीर्वाद देय अमृत समान वचनकरि अपने शास्त्राभ्यासकी कुशलता प्रकाश, नृपनें आदरपूर्वक दिया जो अपना प्रोहितपद ताहि अंगीकार करि वड़ी संपदा सहित आनन्दतैं सुख सूं कौसम्बोपुर विखैं तिष्ठते भए, यह कथा तो इहां रही।

एक दिन राजग्रह नगरका राजा सवल स्नानके अवसर विखैं अपनी देदीप्यमान मणिनकरि जड़ित सुवर्णमई मुद्रिका तैलमर्दनके अवसर मंदकांति होनेके भयतैं सूर्यमित्रके हाथ दई, तब सूर्यमित्र वा मुद्रिकाकूं अंगुरीविखैं धारण करि अपने घर आया, तहां ब्राह्मण के स्नानसंध्या तर्पणादि कर्म करि अर भोजन करि वहुरि राजमन्दिर जायथा, सो वा मुद्रिकाकूं अंगुरीविखैं नाहीं देखि अत्यन्त खेदखिन्न भया, तब मुद्रिकाके ज्ञान निमित्त परमबोधिनामा निमित्तग्यानीकूं बुलायकरि याभांति पूछी, अहो निमित्तग्यानी, रत्नजडित

सुवर्णमई मुद्रिका मेरे करतैं नष्ट भई सो लाधैगी कि नहीं लाधैगी यह निरूपण करो, तब प्रोहितके प्रश्नतैं निमित्तज्ञानी अपने निमित्त कूं विचार करि कही, हे सूर्यमित्र, तोहि वा मुद्रिकाका लाभ होगा ऐसे कहि करि निमित्तज्ञानी तो अपने घर गया, अर सूर्यमित्र प्रोहित सोककरि खेदखिन्न जौलौं अपने महलके अग्रभाग तिष्ठैथा तौलौ ता नगर बाहर उद्यानविखैं चतुर्विध संघसहित सुधर्मा.मा आचार्य पधारे, ताहि सुनिकरि पुरोहित अपने चित्तविखैं विचारी जो यह ज्ञानी मुनि ग्यान नेत्रकरि मुद्रिकाकूं प्रत्यक्ष बताय देगा. तातैं प्रछन्न एकाकी जायकरि याकूं पूछूं, कैसे हैं सुधर्माचार्य ? अनेक भव्य जीवनिकूं संबोधके दायक है, अर इन्द्र नरेंद्र नागेंद्र-निकरि सेवनीक है चरणयुगल जाके, तीन ज्ञान आदि अनेक गुण-निके आकार, समस्त जीवनिके हितकारी हैं, बहुरि जगत करि वंदनीक जगतविखैं श्रेष्ठ समस्त जगतके स्तुति करवे योग्य है, सो प्रोहित सूर्यमित्र पुण्यके उदयकरि काललब्धिके योगतैं दिनके अस्त होनेके अवसर मुद्रिकाके पूछनेके निमित्त शीघ्रही बनविखैं सुधर्मा-चार्यके समीप गया,तहां ग्यान, रिद्धी आदि अनेक गुणनिके आकार अर शरीरादिक विखैं निर्मोही शिवका साधनविखैं वांछा सहित ऐसा जोगीश्वरकूं देखि लज्जा अर अभिमानके योगतैं प्रश्न करवे कूं असमर्थ अर कार्यको अर्थि ऐसा जो प्रोहित सो कार्यके सिद्धि के अर्थि मुनीके चहुंओर भ्रमण करैं, ताहि परोपकारी जोगीश्वर अवधि ज्ञानके योगकरि अत्यन्त निकट भव्य जानि या भांति अ-मृतमय वचन कहे, भो सूर्यमित्र, नृपकी रमणीक मुद्रिकाकूं करकी

अंगुरीतैं गेरकरि चिंतातुर भयाथका तूं इहां मेरे पास आया है, तब अपने मनमें चिन्तये जे समस्त कार्य तिनके कहिवेतैं हृदयविखैं बहुत अचरजकूं पायकरि सूर्यमित्र शीश नवाय नमस्कार करि मुनीकूं ऐसे पूछता भया, भो ग्याना जहां मुद्रिका परी होय सो मोहि कहो, तदि तिन ज्ञानरूप नेत्रके धारी सुधर्माचार्य या भांति कहते भए, भो धीमन् तेरे महलके पछारी बागके मध्य सरोवरको पारिपैं खरा रहिकरि तूं सूर्यकूं अर्घ देवैथा तब तेरे करके अंगुरीतैं निकसिकरि मुद्रिका सरोवरके जलमैं कमलकी कर्णिकाविखैं शीघ्र ही परी, अबार अदृश्य विद्यमान है, तातैं हे भद्र मुद्रिकासंबधी शोक छोर, अर मेरे वचनविखैं निश्चय करि या भांति मुनीके बचन सुनि करि जहां मुद्रिका बताई थी तहां जाय तैसे ही कर्णिका विखैं परी देखि मुद्रिकाकूं ग्रहण करि हर्षायमान होय राजाको भेंट करि विस्मयकूं प्राप्त भया, सूर्यमुनि पुरोहित चित्तविखैं याभांति विचारता भया, अहो यह मुनिराज प्रत्यक्ष सर्वका ज्ञाता ग्यानी पुरुषनिके मध्य अनुपम महाज्ञानी है, अर भूमिविखैं समस्त निमित्तनके मध्य सारभूत यहही निमित्त है, या कारणतैं इस मुनिन्द्रका आराधन करि जिस निमित्त ज्ञानतैं प्रत्यक्ष मुद्रिका बताई तिस निमित्त ज्ञानकी प्रार्थना करूं, जा निमित्तज्ञानकरि सत्पुरुष पंडितनके मध्य मेरी बड़ी विख्यातता होय, अर महान ऐश्वर्यका लाभ होय, लोकविखैं मान्यता होय, बहुरि परमपदका लाभ होय, या भांति विचार करि अतिलोभी सूर्यमित्र सबनिके प्रछन्न निमित्त ग्यान सीखनेकूं सुधर्माचार्यके समीप गया, तहां योगिराजकूं हात

जोर सिर नवाय प्रणाम करि भले बचनसैं प्रार्थना करी, भो भगवन, भो कृपानाथ, प्रत्यक्ष अर्थका प्रकाशिनी अति दुर्लभ यह विद्या मोहि देहु, तब वे सुधर्माचार्य अवधिज्ञानो सूर्यमित्रका हितके इच्छक सूर्यमित्रप्रति बोले, भोभद्र, यह प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी परम विद्या निर्ग्रन्थ ज्ञानी मुनि बिना औरके प्रगट परिणतकूं नाहीं प्राप्त होय।

भावार्थ—निर्ग्रन्थ मुनि विना और पुरुषके नाहीं सिद्ध होय, अर जो तूं भी विद्याका अर्थी है तो मो समान निर्ग्रन्थ हो, यह बचन सुधर्माचार्यके सुनकरि सूर्यमित्र अपने घर जाय समस्त परिवारकूं बुलाय निर्ग्रन्थ भेषके सिद्धके अर्थी उच्च प्रकार आलोचन करता भया, अहो सज्जन पुरुष हो, सुधर्माचार्यके निकट प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी प्रत्यक्ष चमत्कारणी महाविद्या है, परन्तु निर्ग्रन्थ भेद बिना यह विद्या हमकूं देवैं नाहीं, तातैं विद्याका लाभके अर्थि निर्ग्रन्थ होयकरि छलतैं विद्याकूं लेय अपना कार्यकरि सीघ्रही मैं आ जाऊंगा, इहां मेरा वियोगतैं रंचमात्र भी शोक करना तुमकूं योग्य नाहीं है, तब वे सज्जन विद्याके लोभतैं सूर्यमित्र प्रति बोले, हे सूर्यमित्र, जो तुमने विचारी सोई नीको है, परन्तु विद्याका लाभ भए पीछैं अटकियो मति, तुरन्त ही आ जाइयो, या भांति विचार करि सूर्यमित्र प्रोहित तुरत ही घरतैं मुनीके समोप जाय, शिर नमाय, प्रणाम करि केवल विद्याहीका लाभके निमित्त या भांति कहता भया, भो भगवन मेरे विद्यालाभका सिद्धिके अर्थि निर्ग्रन्थ मुनिके भेप आदि जो कर्तव्य होय सो करिकैं मोहि शीघ्र ही प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनी कल्याणरूपिणी विद्या देहु, तब वे सुधर्माचार्य भावो

काल संबंन्धो समस्त पदार्थनिके ग्याता, बाह्याभ्यन्तर चौबीश प्रकार परिग्रहका त्याग कराय सूर्यमित्र बिरामणके अर्थि सुरशिव संपदाके कारण सारभूत अठाईस मूलगुणसहित भगवती दीक्षा दोनी कैशी है दीक्षा ? तीन जगतके जीवनिकरि बंदनीक है, अर तोन लोकके सुखकी करणहारा है, ताहि समय वह सूर्यमित्र प्रोहित सुधर्माचार्यकूं नमस्कार करि यह प्रार्थना करता भया, भो भगवन् कृपा करके अब मोपैं प्रत्यक्षार्थ प्रकाशिनो विद्या देहू, तब सुधर्माचार्य बोले, भो धीमन, क्रियाकलाप आदि अनुयोगनिके अभ्यास किए बिना वह विद्या सत्पुरुपनिकैं भी सिद्ध नाहीं होय है, यह वचन सुनकरि सुबुद्धि सूर्यमित्र पुरोहित वड़े उद्यम करि सूर्यमित्र गुरुके पास चारौं अनुयोग पढनेका प्रारम्भ किया, तहां प्रथम हो परम पुनीत जे त्रेसठ शलाके पुरुपनिके पूर्वभव अर सुख, आयू, काय विभूत आदिका प्ररूपक अर धर्मकारण ऐसा जो प्रथमानुयोग ताहि पुण्य पापके प्रगटताके अर्थि पढता भया, अर लोक अलोकके विभागकूं तथा लोकालोकके आकार विशेपका प्ररूपक अर सात नरक आदि चारों गतिनके दुःखादिकका प्ररूपक, बहुरि स्वर्गादिक सुख संपदाका प्ररूपक ऐसा जो सकल वस्तु तत्वके दिखायवेकूं दीपकसमान करुणानुयोग सिद्धान्त सो गुरुके मुखतैं अध्ययन किया, बहुरि मुनि श्रावककी क्रिया, आचार, गुण अर जघन्य मध्यम उत्कृष्ट श्रावकके तीन भेद, तथा महाव्रत, अणुव्रत, अठारह हजार शीलके भेद, चौरासीलाख उत्तर गुण, तथा तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रतरूप श्रावकके सात शीलभेद अर इनके स्वर्ग मोक्ष-

दिक फल आदि जाविखैं निरूपण किए ऐसा जो सिद्धान्तसो चरणानुयोग श्रीगुरुके वचन करि नीकै अभ्यास किया, वहुरि जा विखैं षटद्रव्य, सप्त तत्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय आदि समस्त पदार्थका संसय, विपर्यय, अनध्यवसायरहित सांचे लक्षण अर जैन दर्शन कहिए सम्यक्दर्शन अथवा जिनमतका सांचा स्वरूप तथा एकान्त, विपरीत, विनय. संशय, अज्ञानरूप पंच भेद मिथ्यात्वका निराकरण अर सांचे झूंठे मतके देव, गुरु धर्मादिकको परीक्षा ही होय ऐसा परमोत्तम द्रव्यानुयोग श्रीगुरुके पास वहुत नीके अभ्यास किया, सो सूर्यमित्र मुनि द्रव्यानुयोगके अभ्यास करही उत्तम सम्य-ग्दृष्टी होयकर हेय जे तजने योग्य अर उपादेय जे ग्रहण करवा जोग्य जे अन्यमतकरि कहे अर जिनमतकरि कहे पचीस सोलह अर सात तत्व नव पदार्थ जिनके शुभाशुभ लक्षण धर्म अधर्मके भेद अर जिनमत तथा अन्य मतके भेदनिकूं भले प्रकार जानिकरि महा वुद्धिवान निर्मल चित्तविखैं याभांति प्रगट विचार करता भया अर स्वर्गमुक्तके सुखका कारण ऐसा जिनमतही इहां सारभूत जगतपूज्य सांचा दीखे है, अर मूर्खनिकरि कल्पना किए वहुत निन्दनीक जे अन्य मत हलाहल समान अनेक जन्मविखैं प्राणनिके घातक ते अब मोकूं नरक निगोदके कारण भासे है, सर्वज्ञ देव करि कहे अर सम्यग्ज्ञानके कारण भूत ए जीवादिक समस्त पदार्थ मोकूं सारसहित भासे है, अर दुराचारी कुमार्गगामीनकरि कहे कल्पित ए खोटे तत्व झूठे महान पापके कारण मैंने अज्ञानतैं वृथाही अभ्यास किए, मतिश्रुतिहै नाम जिनके ऐसे

परोक्ष होय ज्ञान जगतके हितकारी केवल ज्ञानवत लोकालोक संबंधी समस्त पदार्थनिकूं परोक्ष प्रकासैहै, अर इहांही जाकरि समस्त मूर्तीक द्रव्य अर जीवनिके भवांतर प्रत्यक्षपणे साक्षात देखियेहै, ऐसा अवधि ज्ञानहै, ताके देशावधि, परमावधि, सर्वावधि करि तीन भेद है. तिनविखैं देशावधिज्ञान तो चारूंही गतिविखैं सम्यग्दृष्टी जीवनिके भवप्रत्यय अथवा अवधिग्यानावरण कर्मके क्षयोपशमतैं उपजैहै, अर परमावधि, सरवावधिज्ञान तद्भव मोक्षगामी भावलिंगी मुनी जनहीके उत्पन्न होयहै, अन्य जीवनिके नाहीं होय है, बहुरिरूपी द्रव्यनिका सूक्ष्म तत्वके प्रत्यक्ष दिखायवेतैं दीपक समान मनः परययज्ञान भावलिंगी निर्गन्थ मुनीश्वरनीकेही होय है. अर द्रव्यलिङ्गी मुनीनके कुमति कुश्रुत विभंग ज्ञान होयहै, सम्यग्यान कदे भी नाहीं होय है, अर चार घातिया कर्मके नासकरि केवल ज्ञान प्रगट होयहै, कैसाहै केवल ज्ञान ? त्रकालवर्ती समस्त पदार्थनिकूं प्रत्यक्ष जाने है, यह केवलज्ञान त्रिलोक दीपक आत्माका निज स्वरूप है, ए पांचभेद सम्यग्यान समस्त पदार्थनिके प्रकाशक हैं, तिन ज्ञाननके देयवेकूं लोकविखैं कोऊभी काहूकूं समर्थ नाहीं है, ग्यानावरण कर्मके क्षयोपसमतैं अथवा क्षयतैं योगीश्वरनिके ये पांचज्ञान स्वयमेव प्रगट होय है, अर केवल ज्ञान चार घातियानके क्षय ते होय है, इहां मैंने आत्म हितके अर्थि यह भला उत्तम कार्य किया जो अवधि ग्यानके लोभकरि महान संजम ग्रहण किया, जैसे कंदमूलनिकूं हरतैं निधिका लाभ होय तैसे ग्यान पूजाके लोभतैं मेरे दीक्षारूप निधिका लाभ भया, अर ए सुधर्माचार्य समस्त जीवनिके हितके वांछक ग्यानकी अग्यारूप भला

उपाय करि मोकूं भगवती दीक्षा दिई,कैसी है भगवती दीक्षा ? समस्त जगके हितकारिणी है,इस दीक्षाकरि आजि मैं कृत्यकृत्य हूं,अर मोक्ष-मार्गी हूं बहुरि समस्त पापनिकरि रहित मैं आज तीन जगतकर पूज्य भया इस संसारविखैं अनादि कालतैं दुर्लभ ऐसी यह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी एकतारूप जो बोधि सो महान उदय-करि जिनसासनविखैं मैंनें पाई, म्हारे भुक्तिमुक्तिका दायक निर्दोष अर्हन्त देव है, अनन्त गुणनिका आकार अर तीन जगतका नाथ ऐसा अर्हन्त देव मैने काललब्धितै पाया है, अर दुस्तर संसार-समुद्रके तिरवेकूं अथवा भव्य जीवनिकूं तारवेकूं समर्थ ऐसा निर्ग्रंथ गुरू मैने बडा पुण्यका उदयकरि पाया है, कैसा है निर्ग्रंथ गुरू ? धर्मरूप है बुद्धी जाकी, इस संसार विखैं मिथ्यामार्गमें तिष्ठता थका मेरे इतने दिन वृथा ही भये, अर स्नान संध्या तर्प-णादिविखैं मेरे केवल संक्लेशही भया, यह मूर्ख मिथ्यादृष्टी जिन-धर्मतैं पराङ्मुख देवकरि ठिगे थके धर्मके अर्थि कुमार्ग विखैं वृथाही खेद खिन्न होय है, जातैं तीन लोक विखैं सारभूत ऐसा जिन-शासन मैंने अति दुर्लभ पाया, तातैं मैं आज महान पुण्यवान भया अर आज मैं धन्य भया, बहुरि आज ही मैं मोक्षमार्गविखैं गमन करणहारा भया, जैसे जोतिषी देवनिविखैं श्रेष्ठ सूर्य है, अर धातून के मध्य सुवर्णकी खानि श्रेष्ठ है, बहुरि पाषाणनिविखै चिंतामणि परम श्रेष्ठ है, वृक्षनिमैं कल्पवृक्ष, स्त्री पुरुषनिकेमध्य शीलवान स्त्री पुरुष, धनवान पुरुषनिविखैं दातार, तपस्वीनविखैं जितेन्द्री पुरुष, अर पंडितनिविखै ग्यानी जीव, उत्तम आचरणधारी श्रेष्ठ हैं, तैसे

समस्त धर्मनिके मध्य श्री जिनेन्द्रकरि भाषित दयामई धर्म परम श्रेष्ठ है, अर समस्त मार्गनिविखैं श्री जिनेन्द्रकरि भाषित निर्ग्रन्थ भेषरूप जिनेन्द्र मार्ग ही उत्तम श्रेष्ठ है, जैसे गऊके सींगते दूध, अर सर्पके मुखतैं अमृत, वहुरि अनाचारतैं यश, मानतैं महन्तपणा कदाकालभी नाहीं पाईए है, तैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्मके सेवनतैं कुमार्ग विखैं प्रवर्तनेतैं वहुरि खोटे शास्त्रके अध्ययनतैं श्रेय कहिए कल्याण अर शुभ कहिए पुण्यकर्म वहुरि शिव कहिए मोक्ष कदाकाल भी नांही पाईए, इत्यादिक चिंतवन करनेतैं सूर्यमित्र मुनिराज अत्यन्त दृढ़ वैराग्यकूं पायकरि अर करतलकी रेखा समान समस्त हेयोपादेय वस्तूनिकूं जानिकरि वहुरि सम्यग्ज्ञानके प्रभावतैं वारह प्रकार संयम विखैं तल्लीन होयकरि जिनसासनविखैं कहे जे व्रत अर तप तिनके पालवेकूं उद्यमी भए। याभांति ज्ञानाभ्यासकरि सूर्य मित्र मुनिराज इन्द्र नरेन्द्र नागेन्द्रनिकरि पूजनीक भए, कैसे हैं सूर्यमित्र मुनिराज ? सम्यग्ज्ञानादि अनेक गुणगणनिकी है निरन्तर वढ़वारी जिनके अर तीन लोकविखैं विख्यात है कीर्ति जिनकी वहुरि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रकी एकतारूप जो मोक्षमार्गताविखैं अतिचाररहित है गमन जिनका ऐसे परमोत्कृष्ट भए, तातैं भो भव्य जीव हो, तुम भी ऐसे जानिकरि वड़े आदरतैं सकल सास्त्रनिका अध्ययन करो, समस्त पापनिका विनाश करनहारा अर पुण्यका निवास यह सम्यग्ज्ञान है. अर ग्यानवान पुरुषही ग्यानने आश्रय करे है, और शिवरमणीका वदनारविंद ग्यान करिहि अवलोकिए है, इन्द्र, नरेन्द्र, नागेंद्र, ग्यानहीके अर्थि शीश

नाय नमस्कार करे है, समस्त जीवनिकै ग्यानतैं टार और अनुपम दूजा नेत्र नाहीं है, भावार्थ—ग्याननेत्रतैं ही समस्त वस्तु तथावत जानी जाय है, अर ग्यानका फल समस्त कर्मनिका अत्यन्त क्षय-रूप मोक्ष है, अर मैंभी ग्यानही विखैं निरन्तर मन लगाऊ हूं, तातैं हे ग्यान मोहि ग्यानी करहु, इहां भाव ऐसा है, जो उपांत्यकी काव्य विखैं तो ग्यानाभ्यास करनेका उपदेश है अर अन्तकी काव्यविखैं ग्यानकी महिमा सम्बोधनसहित सप्त विभक्तिनकरि दिखाई है।

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्यविरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृतग्रन्थकी देशभाषामयवचनिकाविखैं सूर्यमित्र पुरोहितके दीक्षाग्रहणका वर्णन जामैं ऐसा चौथा सर्ग समाप्त भया।

चौपाई।

बाहिरभ्यंतर परिग्रह छार, गुणसंयुत धारी अधिकार।
सकलशिरोमणि तिहुंजगवंद्य, प्रणमूं अध्यापक गुनकंद॥

अथानंतर यह सूर्यमित्र मुनि सुधर्माचार्य सहित ग्राम, खेट, पुर, अटवी आदि अनेक देशनिमैं विहार करते अनुक्रमतैं इस चंपा-पुरमैं आये, सो यह पुरी भगवान वासपूज्य द्वादशम तीर्थंकरकी निर्वाणभूमि है, ताकी तीन प्रदक्षिणा देय स्तुतिकर नमस्कार किया तहाँ निर्वाण भक्तिकर सहित सुधर्माचार्यकै साथि मोक्षके अर्थि अर मोक्षकूं प्राप्त भये जे सिद्ध परमेष्ठी तिनके गुणग्रामकी भावना के अर्थि प्रदक्षिणासहित भक्ति करनेके अवसर अंतरंगविखैं परि-

णामनिकी विशुद्धता निमित्त अज्ञानरूप तिमिरका घातक और त्रिलोकविखैं समस्त मूर्तिक द्रव्यनिका प्रकाशक जगतविखैं उत्तम ऐसा अवधिज्ञान सूर्यमित्र महामुनिके स्वयमेव प्रकट भया, अहो भव्य जीव हो, निर्वांछक शांतपरिणामी वीतरागी मुनिनके अवधिग्यान तपके प्रभावकरि अनेक ऋद्धि स्वयमेव प्रगट होय है, यामैं कछूभी संशय नांही, ग्यानविग्यानकरि परिपूर्ण अनेक गुणनिका सागर रत्नत्रयकरि विशुद्ध है आतमा जाका, सकल संघके भारविखैं समर्थ, महातपस्वी, महाध्यानी, अतिचाररहित पंचमहाव्रतका धारक पांचू इन्द्रियनका विजयी महाशीलवान, योगीनमैं प्रधान शांत है परिणाम, समस्त जीवनिके हितका वांछक संसारिक सुखविखैं वांछारहित ऐसा सूर्यमित्र मुनिराज बडे गुणनिकरि अनुक्रमतैं सकल शिष्यनिके मध्य प्रधान शिष्य भए, तब पूर्वोक्त प्रकार गुणनिकरिसहित सकल संघविखैं प्रधान सूर्यमित्र अवलोकन करि और संघके भारविखैं समर्थ जानि, सकल संघकी साखि विधिपूर्वक आचार्यपद ताकूं देयकरि गुरु सुधर्माचार्य शिवसुखके सिद्धिके अर्थ आप एका विहारी भये, सुधर्माचार्य एकाकी उग्रोग्र तप करते अर ईर्यापथ करि अनेक देशपुर ग्रामादिविखैं विहार करते, ध्यानाध्ययनविखैं आसक्त, प्रमादरहित, जितेंद्री, मौनव्रतके धारक महाधीरवीर अनुक्रमतैं वाणारसी आए, तहां वाणारसीके वाहरि भूमिभागविखैं प्रासुक निर्जुंत शुभस्थानमैं आत्मध्यानका अवलम्बनकरि वे सुधर्माचार्यमुनि योगधार तिष्ठे, तहां आत्मध्यानके योग करि शिवमंदिरकी सिढीसमान क्षपकश्रेणीविखैं आरूढ होय निर्मल

शांत परिणामी योगीराज चार घातिया कर्मनिकूं निर्मूलन करि नवकेवल लब्धीसहित केवल ज्ञानकूं प्राप्त भए, कैसा है केवल ग्यान ? शिवरमणीका मुखावलोकनकूं दर्पणसमान है, तब वे केवली भगवान इन्द्रादिक देवनिकरि केवल कल्याणकको पूजाकूं पाय तहां ही अंतिम शुक्लध्यानके बलतैं अवशेष चार अघातियानका निपातकरि देहकूं त्याग निर्वाणकूं प्राप्त भए, कैसा है निर्वाण ? लोकशिखरपैं स्थिरीभूत अनंत गुणनिका सागर है, अर अविनाशी अनुपम सुखनिकी खानि है।

अथानंतर वे सूर्यमित्र मुनिराज सकल संघके नायक धर्मकी प्रभावना करते आत्मिक स्वाधीन अविनाशी सुखके अर्थि भव्य जीवनकूं धर्मोपदेश देते पृथ्वीतलविखैं बिहार करते ईर्यापथके पालक एक दिन भोजनके अर्थि कौशम्बीपुरीविखैं प्रवेश करते भए तहां तिणका भाणिजा अग्निभूत वायुभूतका वडा भाई सोमसर्म विरामनका पुत्र धर्मात्मा, परम निर्ग्रन्थ अपने गुरु सूर्यमित्र मुनिराजकूं दुर्लभ निधिसमान देखि अत्यन्त हर्षायमान होय, हे भगवन्, इहां तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ, ऐसे तीन वार उच्चार करि श्रीमुनिकूं पडगावता भया, दातारके सप्तगुणसहित नवधा भक्तिकरि सरल, मधुर, प्रासुक, ग्यान ध्यानादिककी वृद्धीका दायक, आहार दान अपने उपकारके अर्थि सूर्यमित्र मुनिराजकूं भावसहित दिया, तब वे मुनिराज वीतराग परिणामनितैं भोजनकर आत्मध्यानके अर्थि उलटे वनकूं चाले, तिहि अवसर नमस्कार करि अग्निभूतने ऐसे वचन कहे, हे भगवन्, मेरा छोटा भाई वायुभूत क्रोध, मायाआदि

अनाचारनिकूं अर तुमसरखे महंत पुरुषनको निन्दा करि निरन्तर पापका उपार्जन करे हैं, तातैं हे भगवन्, वा दुराचारीके संबोधवेके अर्थि वाके घर पधारो, जातैं तीन जगतके जीवनिकूं संबोधवेकूं आपही समर्थ हो, ये वचन सुनिकरि मुनिराज बोले, भो अग्निभूत वा वायुभूतके निकट कदेभी जावो योग्य नाहीं है, जातैं वायुभूत स्वभावहीतैं रुद्र परिणामी हैं, अर हमारे दर्शनमात्रतैं निंदा करि दुखदाई महान पापकूं अंगिकार करेगा, जा पापकरि वाका जीव चिरकाल दुर्गतिविषैं भ्रमण करेगा, ये बचन मुनिके सुनि फिर अग्निभूत बोल्या, भो स्वामिन्, मेराही आग्रहतैं आप पधारो, आप के संबोधवेतैं वाका कछु होणहार है सो होहू, या भांति अग्निभूतके आग्रहतैं त्रिलोकवर्ती जीवनिके हितविषैं उद्यमी, अर समस्त जीव-निपैं है समभाव जिनके, ऐसे सूर्यमित्र मुनिराज अग्निभूतकी साथि वायुभूतके घर गए, वो पापी दुराचारो वायुभूत मुनिकूं देखि करि सूर्यमित्र जानि पापके उदयतैं कोपथको कटुक दुर्वचननिकरि मुनिकी ऐसे निंदा करता भया, रे सूर्यमित्र, पहले तूं कृपण, दुष्ट, महान् कुटिल परिणामो था, अर हम दोऊ भाईनकूं भिक्षाके अर्थि घर घर भ्रमावै था' सो अब तूं पापके उदयकरि नग्न भयाथका घर घर भ्रमण करेहै. इत्यादिक कटुक दुर्वचनकरि महामुनिकी निन्दा करि वा वायुभूतने तिर्यंच गतिका कारण निंद्य अशुभ पापकर्मका बंध किया, तातैं जाके जैसी शुभाशुभ गति होनहारी हैं ताके तैसी सामग्री ही मिल जाय है, ताहि निवारण करवेकूं कोऊभी समर्थ नहीं होय हैं. वे योगी सूर्यमित्र मुनिराज उत्तम क्षमादिक गुणनि-

करि साम्यभावके बृद्धीके अर्थि वायुभूत कृत आक्रोश परीषहकूं सहकरि तहांतैं वनांतरकूं गये, तब धर्मात्मा अग्निभूत मुनिकी निंदा करि अत्यन्त दुखी होयकरि चित्तविखैं संवेगकूं पायकरि समस्त विषयनविखैं ऐसे चिन्तवन करता भया, अहो यह अत्यन्त पापी, दुराचारी, पापबुद्धी वायुभूत पापकर्मके उदयतैं अपने दुर्गतको देनहारी इस सूर्यमित्र मुनिकी निंदा बृथा ही करी, अथवा इस वायुभूतका इहां कहा दोष है ? मैं पापी पापात्मा नाहीं आवतैंभी मुनिकूं हठतैं वायुभूतके घरि ल्यायो, कैसाहै मुनि ? भावी काल-संबंधी समस्त शुभाशुभ होनहारका ग्याता है, यातैं वेनिकी निंदाकरि उत्पन्न भया ऐसा पापकर्मका बंध मेरे निश्चयकरि भयाई होसी जा कारणतैं कृत, कारित, अनुमोदनाकरि पापकर्मका बंध होय है, भावार्थ—इहां हठतैं ल्यायकरि मुनिकी निन्दा मैंने कराई, तातैं पापकर्मका वन्ध मेरे ही भया, तातैं इस पापका सुद्धताके अर्थि बन्दीग्रह समान घरका और अपने शत्रुसमान बन्धु जननिका त्याग करि संयम ग्रहण करूं, इहां तिस भाईकरि कहा कार्य है, जो वीत-रागी गुरुनिकी निंदा करैं, इस घर करि अथवा कुटुम्बकरि कहां प्रयोजन सधैगा, जिनकरि नाना प्रकार पापकर्मनिका आश्रय होय, जा कारणतैं अर्हंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु, अर अर्हंन करि कहे शास्त्र इन तीननिकी भक्ति समान स्वर्गमुक्तिका दायक संसारविखैं और धर्म नाहीं है, अर इन तीनूंकी निंदा समान नरकनिगोदको दायक और महान पाप नाहीं है, भावार्थ—जो अर्हंतादिक भक्ति है सोई बड़ा धर्म है, और जो इनकी निन्दा सोई महान् पाप है, या भांति

विचार करि पुण्यात्मा अग्निभूत चित्तविषैं दुगुणा वैराग्यकूं पाय संसार देह भोगनिविषैं उदास होय ग्रहवासका परित्याग करि बाह्य अभ्यन्तर चौवीस प्रकार परिग्रहकूं छोड़ि मन, वचन, कायकरि देविहूके दुर्लभ ऐसा संयम, कर्मनिकी हानिके अर्थि पुण्यके उद-यतैं अंगिकार किया, अहो वह पाप भी यहां भला है, जा पापकरि ग्यानवान् पुरुष संवेगकूं अर मोह रूप वैरीका घातक महान् तप सं-यमकूं प्राप्त होय।

अब अग्निभूतकी भार्या सोमदत्ता इस वृत्तान्तकूं जानि तुरत ही भर्तारका वियोग सम्बन्धी सोकतैं मलीन मुख होय वायुभूतके समीप जाय सोककी शांतिके अर्थि ऐसे कहत भई, हे वायुभूत तैं दुष्ट परिणमतैं महामुनिकी निंदा करी, ताकरि थारा भाई अग्निभूत वैराग्य पायकरि मुनि भया, सो जौ लौं कोऊ नाहीं जानै तौलौं आपां दोऊ चालिकरि समझाय तांहि इहां ले आवैं, इस कार्यके सिद्धिके अर्थि तूं मेरी साथि चलि, अर जो अपने चालनविषैं दीर्घकाल लगैगा तो फिर तेरा भाईकूं ल्यावेकूं हम तुम दोऊ समर्थ नाहीं ह्वैंगे, याभांति सोमदत्ताके वचनतैं महाक्रोधायमान होयकरि क्रोधान्ध वायुभूत क्रोधकरि अग्निभूतकी भार्या जो सोमदत्ता माता समान बड़ी भाउज ताके मुखपरि पादकरि ताड़ना करी, भावार्थ— क्रोधतैं भौजाईके मुखपै दृढ़ लात दई, तब वायुभूतकी पादकी ताड़-नातैं सोमदत्ता स्वपरघातक क्रोधकूं पायकरि निंद्यकर्मका कारण जगतनिंद्य इस भांति निदान करती भई, अरे दुराचारी, इहां तो मैं अबला कहिए निर्बल हूं, तेरे मुखपै उलटी लात देनेकूं समर्थ नाहीं,

तथापि जन्मान्तरविखैं जैसी तैसी स्त्री हूंगी तहां तेरा इसही पादका स्तोक स्तोक खंडन करूंगी, भखुंगी, अहो यह बड़ी अचरजको वार्ता है, जे क्रोधकरि आंधे दुराचारी पापी जीव हैं ते अपना अर परका हिताहितकूं नाहीं देखे है, ऐसे जानिकरि धर्मबुद्धी ज्ञानी पुरुषनिमैं दोऊ लोकका घातक अर धर्मशर्मका विनासक ऐसा शत्रु-समान क्रोध, क्षमारूप वाणनिकरि हनिवे योग्य है।

अब वायुभूतके मुनिराजकी निंदा कियेतैं सातवे दिन अत्यन्त पापकर्मके उदयतैं सर्व सरीर विखैं महाघोर दुःखनिको एक निधान सम उदम्बर जातिका महान कोड़ आदि व्याधीनिकरि घोर दुःख-निकूं भोगि आर्तध्यान प्रगट भया, आचार्य कहै हैं, अहो जीव हो, महान् पापकर्मके उपार्जनकरि पापी जीव इसही भवविखैं तत्काल नानाप्रकारके क्लेशनिकरि दुःखनिकूं पावे है, अर परभव-विखैं जे नारकादि सम्बन्धी दुःख भोगवे है तिनकी कथा कहवेकूं कौऊ भी समर्थ नहीं है, अब वो वायुभूत उदम्बर कोढ आदि व्याधीनिकरि घोर दुःखनिकूं भोगि आर्तध्यान करि प्राणनिकूं छोड़ि पापके उदयतैं ताहि कौसंबीपुरीविखैं गर्दभी कहिए गद्धी भई अहो भव्य जीव हो परम पवित्र, परमपूज्य, अर्हन्तदेव निर्ग्रन्थ गुरु, दयामई धर्म अर अर्हन्त करि कहे शास्त्र अर धर्मात्मा श्रावक इनकी निंदाका त्याग करना योग्य है. अब वा गर्दभी पापके उदयकरि अति दुःखनी नाना प्रकारके सैंकड़ा क्लेश-निके दुःख और क्षुधा, तृष्णा, शीत, उष्णसम्बन्धी तीव्र वेदना बहुरि लोकनिविखैं पैंड पैंड विखैं काष्ठ पाषाणको ताड़ना आदि अनेक

प्रकार दुःखनिकूं भोगि अल्पआयुके अंत मरणकरि तहांहो कौस-वीविखैं महा दुःखनी सूरडी भई, सो सूरडी स्वामोरहित जाका व्याधीनिकरि घोर दुःखनिकूं भोगि आर्तध्यानकरि प्राणनिकूं छोड़ि पापके उदयतैं ताहि कौसम्बीपुरीविखैं गर्दभी कहिए गद्धी भई, अहो भव्य जीव हो परमपवित्र, परमपूज्य, अर्हन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु, दयामई धर्मनिके निंदक जोवनिके पापके उदयतैं इसही भवविखैं भूत, भावी, वर्तमान पुण्यकर्मका अर निजका नास हो है, याभांति जानिकरि भव्य जीवनिनै प्राणनिका अंत होतैं हो अर्हन्तदेव, कोऊ रक्षक नाहीं, पराधीन, क्षुधा तृष्णा आदि तथा लोकनिकी ताड़ना आदि अनेक प्रकार दुःखनिकूं भोगि वड़े कष्टतैं प्राणनिका त्यागकरि पाप उदयतैं याहो चंपापुरीविखैं चाण्डालके वाडेमें कूकरी भई, कैसी है कूकरी ? महान् घोर दुःखनिकरि व्याकुल है और विकराल कहिए महा भयंकर है, मुख जाका वहुरि अत्यन्त क्रूर है परिणाम जाके, सो कूकरी पापके उदयकरि तिसही चांडालका वाडामैं क्षुधा, तृष्णा, शीत, उष्णसम्बन्धी नानाप्रकारके दुःखनिकू भोगि लोकनिको ताड़ना करि अति कष्टतैं प्राणनिकूं छाड़ि तहांही कौसाम्बी नामा चांडालीके जात्यंधा नामा चांडाली पुत्री भई, कैसी चांडाली ? पापके उदयकरि दुःखकरि परिपूर्ण है शरोर जाका, और जन्महीतैं आँधी अर अत्यन्त दुर्गन्धमई है शरीर जाका, वहुरि विकराल कुरूपकी धरनहारी भई।

अथानंतर तिह अवसरविखैं धर्मध्यानविखैं सावधान सूर्यमित्र अग्निभूत दोऊ मुनिराज पृथ्वीविखैं विहार करते जहां वायुभूतका

जीव जात्यन्धा चांडाली भई हुती तहां आये, तहां सूर्यमित्र मुनि-राज तो उपवासे थे सो वनविखैंतिष्ठे, अग्निभूत मुनि आहारके अर्थि ता नगरीमैं गये, सो तहां जावतैं मार्गविखै वहुत वृक्षनिके बीच जामूणका दरखतके तले वैठो दुःखकरि पोडित वा चांडालीकूं देखि ताके दुःखकरि मुनि दुःखित भये, अर तिह अवसरविखैं भवांतरका स्नेहतैं शोककरि अग्निभूत मुनिके नेत्रनितैं वलात्कार अश्रुपात भये, भावार्थ—चांडालीकूं दुःखी देखि पूर्व स्नेहके संवंध तैं मुनिके नेत्र अश्रुनतैं वलात्कार भर गये, तव तहांहोतैं उलटे वाहुड सिघ्रही जाय अपने गुरुकूं नमस्कार करि या भांति पूछते भये, भो महा ग्यानिन चांडालोके दर्शनमात्रतैं मेरे नेत्रनविखैं अश्रु पात भए, और मेरे अतिपयकरि दुःख भया, सो इहां सोकादि दुःखनिका कारण कहा है ताहि तुम कहो, तव सूर्यमित्र गुरु ऐसे कहत भए, भो धीमन्, तेरा भाई कुवुद्धो वायुभूत हमारी निंदा संवन्धी पापके उदयकरि निरंतर दुःखभोगि लोकनिंद्य तिर्यग्गत विखैं भ्रमण करि यह सुखका लेशकरिभी रहित जातिंधा चांडाली भई है, और पूरवभवका स्नेहका संवंधतैं तेरे दुःख सोकादि भए हैं, जातैं प्राणीनके भवभवविखैं स्नेह और वैर पूरव संवंधतैं प्रगट होय है, भो अग्निभूत, इन चांडालीके कल्याणकारिणी अति निकट भव्यता आई है सो सुन, जो आजिही याका मरण होयगा, यातैं हे विचक्षण, तूं शीघ्रही जायकरि न्यायके वचनतैं संवोध वा चाडाली कूं पुण्यके प्राप्तिके अर्थ श्रावकके व्रतपूर्वक संन्यासकूं ग्रहण करा-वहू, या भांति सूर्यमित्र गुरुके वचनकरि परोपकारी अग्निभूत

शीघ्रही जायकरि जहां चांडाली तिष्ठेथी तहां प्रासुक भूमिपैं तिष्ठ करि अमृत समान मधुर वचनकरि ऐसैं संबोधते भए, हे पुत्री, तू पापकर्मके उदयतैं चांडालसंबंधी अत्यन्त नीचकुल विषैं घोर दुःखनिको भोगनहारी जन्मतैं आंधी चांडालकी पुत्री चांडाली भई, सो अब तिस पापकर्मके शांतिके अर्थि और सुखके प्राप्तिके अर्थि श्रावकका धर्म अंगिकार करि, तिस धर्मके सिद्धिके अर्थि मेरे कहिवेतैं मदिरा, मांस, मधु कहिये सैत और पंच उदुम्बर फल इनका त्याग करि, वहुरि खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय, आदि चतुर्विधि आहारका त्याग करि सहित पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत पूर्वक संन्यास मरण अंगिकारकरि, जातैं इहां आज ही तेरा मरण व्हैसी, तातैं सुखके प्राप्तीके अर्थि अनसन व्रतकरि शीघ्र ही कल्याण का साधन करि, या भांति अग्निभूत मुनिराजका वचन सुनिकरि वा जात्यंधा चांडाली चार प्रकार आहारका त्यागकरि शीघ्रही श्रावकके व्रत धारिकरि संन्यास अंगिकार करती भई ।

सूर्यमित्र मुनि चंद्रवाहन राजाकूं कहे हैं, हे राजन्, जिह अवसर चांडालीने संन्यास ग्रहण किया तिस अवसरविषैं इस नागसर्म विरामणकी भार्या त्रिदेवी, पुत्रीके प्राप्तीके अर्थि उत्सव सहित हर्षकरि इन नागनिनैं पूजवेकूं आवेथी, तब चांडाली मार्गके वशतैं निकट आवती विरामणकी भार्या त्रिदेवीके वादित्रनिका नाद सुनकरि यह निदान करती भई, अहो, व्रत सन्यासके फलकरि इस त्रिदेवी विरामणके उत्तम पुत्री होंगी. ऐसी प्रार्थना करू हूं, इस सिवाय और शुभगतिकूं नाहीं जाचूं हूं, जैसे कोऊ भूतलविषैं

अग्यानी कुवुत्ती मूर्ख रत्नके साटे कांच खरीदै, और हाथीतैं गर्दभ कूं लेवै, वहुरि कांचन देय लोहकूं ग्रहण करैं, तैसैं यह ग्यानहीन जात्यन्धा स्वर्गसंपदाका कारण जो व्रत संन्यासका फल पुण्यकर्म ताकरि निंद्य स्त्री पर्यायकी हर्षकरि याचना करी, तातैं तिस निदानके दोषकरि इस नागसर्म विरामणके यह नागश्री नामा पुत्री भई हैं, कैसी है नागश्री? व्रतके संस्कारको है वासना जाके, सो वह नागश्री आज नागनिके पूजवेकूं इहां आई थी, तव हम सूर्य-मित्र अग्निभूतनैं पुत्रीको वुद्धिकरि याकूं सम्यक्तसहित श्रावकके व्रत ग्रहण कराए, सूर्यमित्र मुनिराज कहे हैं, हे राजा चंद्रवाहन, साधूनका निंदक जो वायुभूत सोई पापकर्मके उदय करि निंद्य तिर्यंच गतिके चार भवनिमैं महाघोर दुःख भोगकर यहां यह नाग श्री भई. हे राजन्, पापकर्मके उदयकरि तो जीव दुर्गतिविखैं भ्रमण करे है, और पुण्य कर्मके उदयकरि शुभगतीकूं प्राप्त होय है, वहुरि पुण्यपापरूप मिश्रभावकरि मध्यगति जो मनुष्यगति ताहि प्राप्त होय है. धर्मात्मा जीव धर्मके फलतैं पापकर्मके फलतैं नरक निर्यञ्च गतिके घोर दुःख अनुभवे है. धर्मात्मा पुरुष धर्मके फलतैं इन्द्र नरेंद्र नागेंद्र तीर्थंकरादिकनि संपदा पावे है, जे तीन लोकविखैं सारभूत सुख है ते समस्त सुख धर्मात्मा पुरुषनिके धर्मके प्रभावतैं प्रगट होय है, और जे जगतविखैं नाना प्रकारके दुःखनिके समूह है ते पापी जीवनिके पापके फलतैं उदय होय है, धर्मके सेवनकरि तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, आदि उत्तम पुरुष हो है, और पापके उपार्जनकरि परनिके दास तथा किंकर घर घरके

भिखारी, दीन, जाचक ही है, जे वस्तु तीन लोकविखैं दुर्लभ है अथवा दूर द्वीपान्तर देशांतरविखैं वर्ते है, ते समस्त मनोवांछित वस्तु धर्मात्मा पुरुषनिके धर्मकरि स्वयमेव प्राप्त होय है, और पापी जीवनिके पापके उदयतैं हातमें तिष्टनीहू वस्तु नष्ट होय जाय है, या भांति धर्मात्मा पुरुष धर्मके प्रभावतैं सर्व उत्तमगतिकूं पावे है, और पापी जीव पापके उदयतैं सम्पूर्ण दुःखकी खानि नरकनिगोद कुगतिकूं प्राप्त होय है, या भांति जानिकरि, अहो भव्य हो, मन वचन कायकी शुद्धताकरि सकल पापनिकूं छोडिकरि स्वर्ग मुक्तीनिके सुखनिके प्राप्तीके अर्थि जिनेंद्रदेवकरि भाषित परम धर्मका सदाकाल सेवन करो, धर्म है सो ब्रह्म कहिये लोकांतिक देव, नरेंद्र, अमरेंद्र पदका दायक है, और मैं भी सुभ गतीके अर्थि सदाकाल धर्मही सेवू हों और धर्मकरिही अनुपम आत्मीक धर्मकूं आचरण करूहूं, तातैं हे धर्म, मेरे संसारके दुःखकूं दूर करि, इहां उपान्त काव्यविखैं तो पुण्य पापका फलकूं प्रत्यक्ष जानि करि पापका परिहार करो और धर्मका सेवन करो, ऐसा भव्य जीवनिप्रति उपदेश दिया है, वहुरि अंतकी काव्यविखै संवोधनसहित सप्त विभक्तिनकरि धर्मकी महिमा दिखाय संसारका भय दूरि करनेको धर्म तैं प्रार्थना करी है।

इत्याचार्य श्रीसकलकीर्तिविरचिते सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रन्थकी देशभाषामय वचनिकाविखैं नागश्रीका भावान्तरका है वर्णन जामें ऐसा पांचवां सर्ग समाप्त भया।

चौपाई ।

श्रीमत तीन भुवनके ईस, गुणसागर प्रणमूं नतशीस, पंचपरमगुरु शिवसुखहेत, जिनमंदिर जिनबिम्ब समेत।

अथानंतर सूर्यमित्र मुनिराजनैं अमृत समान मधुरवानी करि कहे, पापकर्मतैं प्रगट भए घोर दुःखनिकरि सहित ऐसे नागश्रीके पूर्व भवान्तरनिकूं राजा चंद्रवाहन समस्त बिरामण समस्त पुरजनकरि सहित नागसर्म विरामण सुनकरि संसार देह भोगनिविखैं ग्रहवासविखैं वैराग्यकूं पाय धर्मका अद्भुत महातम जानिकरि चित्तविखैं ऐसे चिंतवन करता भया, अहो इस लोकविखैं जिनेंद्र भगवान करि कह्या दयामई जैनधर्म ही सराहिवे जोग्य पुण्यकर्मका कारण है और मूर्ख मिथ्यादृष्टीनकरि कल्पित समस्त जीवनिका घातक ऐसा यग्यादिक और धर्म, कल्याणका कारण नहीं. मुक्ति कहिए समस्त कर्मक्षयस्वरूप शुद्धात्माका है लाभ जाविखैं ऐसा परम निर्वाण इन दोऊनके कारण अठरा दोपरहित छियालीस गुणकरि विराजमान सर्वग्य वीतराग जिनेंद्र देवही महादेव है, और और दोपाविष्ट हरिहरादिक कदे भी देव नाहीं है, बहुरि सर्वज्ञ भगवानकरि कहे ग्यारह अंग चतुर्दश पूर्वगत ही धर्मके मूल सांचे शास्त्र है, और मूर्खनिकरि कल्पना किये वेद भागवत रामायण महाभारत आदि और शास्त्र महान पापके मूल हैं सांचे नाहीं, और लोकालोकके ग्यायक महा प्रवीण समस्त जीवनिके विना कारण बांधव निर्ग्रंथ ही जैनके जती परमपूज्य गुरु है, और पांचों इन्द्रि-

यनके विपयन करि आकुल और मिथ्यादृष्टी करे भी गुरु नाहीं, और भूत, भविष्य वर्तमान त्रिकालवर्ति समस्त वस्तु स्वरूपका सूचक तीन जगतविखैं दीपकसमान जैसा ग्यान निर्ग्रंथ योगीश्वर-निका है तैसा ज्ञान अन्य मिथ्या दर्शनके स्वप्नविखैंहू नाहीं, जैसे केई मूर्ख हालाहल विषकूं भक्षणकरि दीर्घकाल जीवाकी वांछा करे है, जैसे कोऊ अग्यानी बाउली अपने कंठ विखैं पहुप मालकी भ्रांतिकरि सर्पकूं धारण करैं, तैसे कुमार्गगामी मिथ्यादृष्टी पुरुप संध्यातर्पणादिकरि धर्मबुद्धितैं पापकूं आचरण करे है, अहो, यह कुमार्गगामी मिथ्यादृष्टी जीव मदिराके घट समान केवल बहिरंग मलका किंचित अभावतैं अंतरंगविखैं शुद्धताकूं नाहीं प्राप्त होय है, भावार्थ—जैसे मदिराकरि भरे घटनिकूं जलतैं बाहर सैंकरोंवार धोवतैं भी अंतर्गत मदिराके दोपतैं दुर्गंधरहित शुद्ध नाहीं है, जैसे ही अन्तर्गत कपायमलकरि व्याप्त मिथ्यादृष्टी जीव बाह्य स्नाना-दिकनिकरि शुद्ध नाहीं होय है, केवल नरक निगोदका दायक पापकर्महीका बंध करे है, मिथ्यात्व कपायरूप प्रचुर मोहके मलकरि लिप्त कहिये अत्यन्त मलीन ऐसे मिथ्यादृष्टी जीव इहां गंगा, जमुना, त्रिवेणी, गोदावरी, आदि नदी और पुष्कर, लोहागर आदि तलाव, कुवे, कुण्ड, बावड़ी, बहुरि समुद्र आदि जलके निवाणनिविखैं स्नानतैं अपने शुद्धताकी वांछा करे है, ते अग्यानी जीव बुद्धीके भ्रमणतैं तृपाकी शांतीके अर्थि भाडलीके जलकूं पीवे हैं, भावार्थ—जैसे जेष्टमासविखैं अत्यन्त तृपातुर मृग दूरतैं फूले कांसकूं देखि जलके भ्रमतैं दौरकरि तहां जाय हैं सो कांसतैं प्यास कैसे मिटैं ?

केवल खेदखिन्न ही होय, तैसे मिथ्यात्वकरि मलीन मिथ्यादृष्टी जोव गंगादिक तीर्थनिविखैं इतने दिन वृथा ही गमाए, स्नानकरि शुद्ध भया चाहे है सो केवल घोर पापका बंध करै है शुद्ध नाहीं होय है, शुद्धता तो मिथ्यात्व कपाय मलके अभाव भए होय, जल विखैं स्नान किएतैं कदाचित शुद्धता नाहीं होय है, ऐसा भावार्थ जानना। हाय हाय ! मैं कुबुद्धीकरि मिथ्यामार्गविखैं इतने दिन वृथा ही गमाए, अब मेरे कुमतिका अभाव भया, सुमतको प्रगटता भई, तातैं पुण्यके उदयकरि भले मार्गकूं प्राप्त भया हौं, और अब ही मैं पुण्यवान भया हूं, धन्य भया हूं, जातैं इस सूर्यमित्र मुनिराजका प्रसादतैं अनादि कालतैं अति दुर्लभ अमोलिक ऐसा जैनधर्म मैंने पाया, इत्यादि नानाप्रकार चिंतवनके उपाय करि चित्तविखैं द्विगुणित संवेद निर्वेदकूं पाय सूर्यमित्र मुनिराजके वचनरूप अमृतका पानतैं बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहकरि सहित मिथ्यात्वरूप विषकूं वमनकरि नागश्रीका पिता नागसर्मा पुरोहित भगवती दीक्षा ग्रहण करता भया, और ताही समय और बहुत ब्राह्मण सूर्यमित्र मुनिराजके वचनतैं जिन धर्मका अद्भुत माहात्म्य जानिकरि संसारदेह भोगादिविखैं परम वैराग्यकूं पायकरि शीघ्रही कुमार्गकूं और बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहकूं त्यागकर मोक्षके अर्थि मुनीका संयम ग्रहण किया, और वा नागश्री अपने पूर्वभव सुनकरि अनाचारके पापनितैं भयभीत होय और संवेगरूप आभूषणकूं पायकरि ताहि समय एक सुपेद साड़ी विना समस्त परिग्रहका त्यागकरि बाल्यपणेमें ही अति प्रवीण अर्जिका भई, और नागसर्मा पुरोहितकी

भार्या त्रिदेवो विरामणकी आदि प्रवीण बहोत विरामण्याभी जैन-धर्मकूं सुनिकरि संसार देहभोगनिविषैं वैराग्यकूं पाय मोहरूप वैरीका घात करि शीघ्र ही स्वर्ग मोक्षादिककी प्राप्तिके अर्थि परि-ग्रहका त्याग करि सारभूत सुखनिकी खानि और मुक्तिकी माता-समान ऐसी भगवती दीक्षा अंगिकार किई, और चंपापुरीका राजा चंद्रवाहन भी नागश्रीके कथाके श्रवणमात्रतैं विषयभोगादिविषैं उदास होय और लोकपाल पुत्रकूं राज्य देय बहुत भव्य जीवनि-करिसहित मन, वचन, कायकी शुद्धताकरि मोक्षके अर्थि जिनमुद्रा कूं हर्षतैं धारण किई और राजा चंद्रवाहनकी बहुत राण्याभी वैराग्यकूं पाय भरतारकी साथि मोक्षसुखके अर्थि शीघ्रही आर्यि-कानिके व्रत आचरण किए और और भी पुरवासी बहुत लोक नागश्रीकी कथारूप अमृतपानतैं मिथ्यात्वरूप विषका वमन करि, और परम सम्यग्दर्शनकूं ग्रहण करि कितनेक तो मोक्षके सिद्धीके अर्थि महाव्रत धारण किये और केईकनिनैं अणुव्रत ग्रहण किये, वहुरि केईकनिनैं धर्मविषैं महान श्रद्धाही ग्रहण करी, तावर पीछैं वह सूर्यमित्र मुनिराज बड़ा संघसहित धर्मकी प्रभावनाके अर्थि शीघ्रही विहार करनेकूं प्रारम्भ किया, सूर्यमित्र गुरुके वचनकरि वे समस्त नवीन दीक्षित शिष्य निरन्तर सावधान यत्नाचारतैं अंग पूर्वादि समस्त श्रुतकूं पढ़ते भये, ते समस्त मुनिराज सूर्यमित्र गुरुकरि सहित कर्मरूप वनविषैं दावानल समान ऐसा बारह प्रकार घोर तप भवभोगरूप वैरीके सांतीके अर्थि करते भये, और सूने घर, पर्वतकी गुफा, पर्वतके शिखर, पर्वतके दण्डे और निर्जन

गहन वन आदि स्थाननिविषैं ध्यान और अध्ययनकी सिद्धिके अर्थि वे मुनि प्रमादरहित निवास करते भये और गमन करते वन पर्वत आदि स्थाननिविषैं जहां सूर्य अस्तकूं प्राप्त होय तहां ही वे मुनि जीवदयाके प्राप्तीके अर्थि कायोत्सर्गकरि तिष्ठे हैं और वे मुनि एकाग्र चित्तकरि यत्नतैं निरंतर धर्मशुद्ध ध्यानकूं चिंतवे है, वहुरि आर्तरौद्र ध्यानकूं कदेभी नाहीं विचारे है, और वे मुनि सदाकाल भव्य जीवनिकूं धर्मका उपदेश स्वाध्याय पट् आदि शुभ-कर्मनिकूं कहे है, वहुरि भोजन स्त्रीआदि विकथानकूं कदे भी नाहीं करे है, और वे मुनि सारभूत अठाईस मूल और चौरासी लाख उत्तरगुण और चन्द्रमासमान उज्जल चारित्र मोक्षके सिद्धिके अर्थि महाव्रत धारण किये, अर केईकनिनैं अनुव्रत ग्रहण किये, वहुरि केईकनिनैं धर्मविषैं महान श्रद्धा ही ग्रहण करी. तावर पीछैं वह सूर्यमित्र मुनिराज संघसहित धर्मकी प्रभावनाके अर्थि शीघ्रही विहार करनेकूं प्रारम्भ किया, सूर्यमित्र गुरुके वचनकरि वे समस्त नवीन दीक्षित शिष्य निरन्तर सावधान यत्नाचारतैं अंगपूर्वादि समस्त श्रुतकूं पढते भये, ते समस्त मुनिराज सूर्यमित्र गुरुक-रिसहित कर्मरूप वनविषैं दावानलसमान ऐसा वारह प्रकार घोर तप भवभोगरूप वैरीके सांतीके अर्थि करते भए, अर सूने घर पर्वतकी गुफा, पर्वतके सिखर, पर्वतके दराडे अर निर्जन गहन वन आदि स्थानविषैं ध्यान अर अध्ययनकी सिद्धिके अर्थि वे मुनि प्रमादरहित निवास करते भए, अर गमन करते वन पर्वत आदि स्थानविषैं जहां सूर्य अस्तकूं प्राप्त होय तहांही वे मुनि जीवदयाके

प्राप्तीके अर्थि कायोत्सर्गकरि तिष्ठे है, अर वे मुनि एकाग्र चित्तकरि यत्नतैं निरंतर धर्मशुक्ल ध्यानकूं चिंतवे है, वहुरि आर्तरौद्र ध्यानकू कदेभी नाहीं विचारे है, अर वे मुनि सदाकाल भव्य जीवनिकूं धर्मका उपदेश स्वाध्याय पट्आदि शुभकर्मनिकू कहेहै, वहुरि भोजन स्त्रीआदि विकथानकूं कदेभी नाहीं करे है, अर वे मुनि सारभूत अठाईस मूल अर चौरसी लाख उत्तरगुण अर चन्द्रमा समान उज्जल चारित्रकूं जतन सहित मन, वचन, कायको शुद्धताकरि अतिचाररहित पाले है, अर अर्हन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु, अरहन्तके प्रतिविंव निर्वाणभूमिआदि धर्मके स्थानकनिकूं अवलोकन करे है, अर वे ज्ञानी मुनी खोटे तीर्थ, खोटे स्थान, अर खोटे मार्ग इसके गमनविखैं पांगलासमान है, वहुरि निर्वाणभूमिआदि भले तीर्थ अर भलेगुरु यात्राआदि धर्मकार्यविखैं गमन करनहारे है, अर वे मुनि स्त्रीकथाआदि विकथा अर पराई निंदाआदिके करनेविखैं गूंगासमान है, अर उत्तम पुरुपनिकी समीचीन कथा सिद्धान्त वहुरि जीवादिक तत्वनिके स्वरूप आदिकके कहनेविखैं उत्साहसहित है, अर जे भारत रामायण भागवतआदि खोटे शास्त्र, अर खोटी कथा, खोटे वचन, तिनके सुणवे विखैं वहरेसमान है, वहुरि सर्वज्ञकरि कहे आगम अर आत्मतत्वादि धर्मआदिके सुणवे विखैं सदा सावधान है, वहुरि वे मुनिराज परनिंदाकरि रहित है, अर स्वाध्याय ध्यानादिकविखैं निरन्तर चित्तकूं लगावे है वहुरि पापके लेशमात्रतैं अति भयभीत केवल मोक्ष हीके वांछक है, वहुरि वह मुनि धीरवीर उपसर्गविखैं निर्भय समस्त विकारकरि रहित परिपह सहनेविखैं

महा धीरवीर है अर पापकर्मका वन्ध होनेविखैं वड़े कायर हैं, इत्यादिक नानाप्रकार शुभ आचरण करि सोभायमान जीते है मोह-रूप वैरीके संतान जिन वाह्य अभ्यन्तर परिग्रहकरिरहित सारभूत गुणनिकरिसहित तप ही है धन जिनके ऐसे वे मुनिराज सूर्यमित्र गुरुकरिसहित यत्नतैं नाना देश पुरग्रामादिकनिविखैं विहार करै है, अर वे नागश्रीआदि समस्त अर्जिका अनेक देश पुरग्रामादि-कनिविखैं विहार करतो भई, कैसो है वह अर्जिका शुभ है आसय जिनका अर धर्मध्यानविखैं तत्पर सदाकाल सिद्धांतनिको पढ़ने-विखैं है उद्यम जिनके, अर हन्या है मोह, प्रमाद अर इन्द्रियरज्या, व्रतशीलादिकरि भूषित आत्माकार्यके साधन विखैं उद्यमी, पापतैं भयभीत, सरल है परिणाम जिनके वहुरि विकार रहित है भेस अंग जिनके, नानाप्रकार तपश्चरण विखैं तत्पर अत्यन्त निर्मल है।

अव सूर्यमित्र मुनिराजके दुर्धर तपश्चरण करि अर परिणाम-निकी अत्यन्त विशुद्धता करि अर अति निर्मल आचार संयमनि-करि वहुरि धर्मशुक्लादि समीचीन भावनिकरि उग्रदीप्तआदिक सार-भूत नानाप्रकारकी रिद्धि स्वयमेव प्रगट भई, वे सूर्यमित्र मुनिराज संघसहित पृथ्वीविखैं विहार करते अर अनेक भव्य जीवनिकूं मोक्षमार्गविखैं स्थापन करते धर्मोपदेशरूप अमृतकरि समस्त जीव-निकूं तृप्त करके महन्त पुरुपनिके गुरु एक दिन धर्मकी प्रभावनाके अर्थि राजग्रह नगरके समीप आयकरि प्राशुक वनकी भूमिविखैं विराजे, तिह अवसरविखैं कौसंवीपुरीका राजा अतिवल सो राज-ग्रह नगरका सुवलनामा राजा, ता पितृव्य कहिये काका था, ताके

दर्शनकूं आयकरि सुबलकरि सन्मानित किया थका प्रीतकरि तिसही राजग्रह नगरविखैं तिष्ठै था, तब वे सुबल अतिबल दोऊ राजा धर्मके वांछक वनपालके मुखतैं सूर्यमित्र मुनिराजका आगमन जानिकरि शीघ्रही धर्मकेअर्थि मुनिराजके वंदनाकूं वनकेमध्य गये, तहां तिष्ठते दीप्तरिद्धकरि प्रकाशमान सूर्यमित्र मुनिराजकूं शीश नवाय प्रणामकरि हर्षसहित प्रासुक अष्टद्रव्यकरि भक्तिपूर्वक पूजनकरि अर उपमा रहित बहुरि समस्त दिसानके अन्धकारका विनाशक ऐसा सूर्यमित्र मुनीके देहकी दैदीप्यमान कांत्यादिकनिकूं देखिकरि राजग्रह नगरका राजा सुबल अतिशयकरि बहुत विष्मयवान भया, तपश्चरणका अतिशयके देखवेतैं हर्षायमान भया, ऐसा राजा सुबल साक्षात प्रत्यक्ष दीक्षाका फल देखिकरि अपने हृदयविखैं ऐसे तर्क करता भया, अहो ! यह सूर्यमित्र पुरोहित विप्रनमें प्रधान मेरा दास समान शुभचिंतक किंकर था; सो भगवती दीक्षा अर तपश्चरणनिके अनुपम फलतैं अनेक भानुसमान दैदीप्यमान रूपवान महातेजस्वी महान ज्ञानी कांतीकर प्रकाशमान किये हैं दिसानके समूह जानैं सकल संघविखैं प्रधान ऐसा गुणवान सूरपदका धारक भया है, जिन पुण्यवंत महंत पुरुषनिके जिन तप संयम ध्यानादिकनिकरि इनही लोकविखैं पूजा सत्कार अर तीन जगतविखैं पूज्यपना बहुरि नानाप्रकारके चमत्कारनिकी प्रत्यक्ष दिखावनहारी महानरिध्या प्रगट होय हैं, तो तिन भव्यजीवनिके तपश्चरणादिक करि परलोकविखैं सारभूत कैसो विभूत संपदा वा कौनसा उत्तम उच्चपद होयगा, तातैं मैं अपने चित्तविखैं ऐसी जानू हूं जो तपश्चरणके

फलतैं इसही लोकविखैं तैसी अनुपम रिद्ध संपदा सदा पाइयेहै तो परलोकविखै यातैं अधिक तैशीही ऋद्धि संपदा पावैंगे ऐसा निश्चय है।

अर जो राज्यसंपदाके त्याग करि इस भव विखैं वा परभव-विखैं परम संपदा पाइये है, तो तिस राज्यसंपदाके छोरनेविखैं ग्यानवंत पुमेंपनिकै कालका विलंवन कहा है? भावार्थ—कछूभो कालका विलम्वन नाहीं है, याभांति चित्तविखैं विचार करि राजग्रह नगरका राजा सुवल धर्मविखें अर धर्मका फलविखैं परम संवेगकूं पाय वहुरि संसार देहभोगादिविखें अन्यन्त उदास होय राज्यका अत्यन्त पापरूप भारनै, अर गृहवंधनकूं छोरवेकूं वहुरि कल्याण-रूप निर्मल तपश्चरणका भारकूं अंगीकार करवेकूं उद्यमो भयो, तावरपीछैं राजा सुवल अपने तपकी प्राप्तिविखैं कौसंवीका राजा अतिवलप्रत कहता भया हे धीमन् नृप! अतिवल मगध देश राज-ग्रह नगरका परिपूर्ण राज्य तूं ग्रहण करि मैं संयम अंगीकार करूं हूं, तव धर्मात्मा राजा अतिवल सुवलकूं कहता भया भो राजन्, जो महानदोप राज्यका तोहि दीख्या सोही महानदोप विशेप सहित अब मोहि दीख्या है अर तप धर्म चारित्रके जे गुण तोहि दीखे तेही गुण भेद विग्यानरूप निर्मल नेत्रकरि निश्चय में मोहि अधिक दीखे है यातैं तपःसंयमादि गुणनिके प्राप्तीके अर्थि दुर्द्धर राज्यरूप पापका भार छांड़िकरि मुक्तीका राजके अर्थि तेरी साथि तपसंयम अंगीकार करूंगा, ऐसे वचनकरि अतिवलकूं रज्यसुखतैं पराङ्मुख जाणि राजा सुवल मीनध्वज पुत्रके अर्थि राज्यसंपदा देयकरिआ-

त्महितके अर्थि अतिवलादि वहुत राजानिकरि सहित राजा सुवल सर्वपरिग्रहनका त्यागकरि शीघ्रही सूर्यमित्र मुनिराजके समीप महामुनि भयो, तापीछै तिन मुनिकरिसहित सूर्यमित्र मुनिराज धर्मकी प्रभावनविखैं उद्यमी जगतके वन्धु सर्वनिके हितकारी परम-प्रवीण मोक्षमार्गकी प्रवृत्तीके अर्थि भव्य जीवनके संवोधनेकूं पुर ग्राम वनादिकनिविखैं विहार करवेकूं आरम्भ करते भए।

अथानन्तर नागश्री अर्यिका निजसक्ति प्रमाण यावज्जीव निर्दोप तपकरि अर अतिचाररहित भलीभांति संयमकूं पालि वहुरिं अन्तविखैं एक महिनेकी आयु अवशेष जानि समाधि मरनके सिद्धिके अर्थि समस्त आहारनका त्यागकरि अर शरीरतैं नेहका त्यागकरि आनन्दसहित सन्यास अंगीकार किया, तिह अवसर-विखैं क्षुधा, तृषा आदि समस्त परिपहनकूं जीत अर उपवासरूप अग्निके संयोगकरि शीघ्र ही गात्र सुकाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र अर सम्यक् तप ए परम चार आराधनाका आराध-नकरि धर्मध्यानविखैं तत्पर यत्नाचारतैं समाधिमरणकरि प्राणनिका त्याग किया, निर्दोप तपःसंयमके प्रभावकरि सुखनिकी खानि ऐसा अच्युतस्वर्ग ताविखैं आकास स्फाटिक मणिमई मनोहर पद्मगुल्म विमानविखैं सो नागश्रीका जीव दिव्य रूपवान पद्मनाभनामा महर्द्धिक देव भया, कैसाहै देव ? अनेक देवनिकरि सेवनीक हैं चरणारविंद जाके, अर नागश्रीका पिता नागसर्म विरामण मुनि भया था सोभी निज सक्ति प्रमाण जन्मपर्यन्त निर्दोप महानतपकरि आयुके अन्त सन्यास धारि समाधितैं प्राणनिका त्याग करि तप-

संयमके प्रभावतैं अच्युत स्वर्गविखैं तिसही पद्मगुल्म विमानमैं दिव्यदेहकाधारी महर्द्धिक देव भया, बहुरि नागश्रीकी माता त्रिदेवीनामा अर्जिका निजशक्ति प्रमाणव्रत सम्यक्सहित तपकरि अन्तविखैं संन्यास धारि आत्मीक सुद्धितैं देहका त्याग करि अपने तपश्चरणतैं उपार्जन किया जो पुण्य ताके फलतैं अच्युत स्वर्गविखैं जो नागश्रीका जीव पद्मनाभ देव भयाथा ताके दिव्य देहका धारक अङ्गरक्षक देव भया, अर चंपापुरका राजा चन्द्रवाहन, राजग्रहनगरका राजा सुबल कौसाम्बीका राजा अतिबल ए तीनूं उत्तम मुनि उत्तम तपश्चरण करि आयुके अन्त समाधिसहित शांतिसे प्राणनिका त्याग करि तपकर्मके प्रभावतैं सुखनिकी खानि जो आरणस्वर्ग ताविखैं बड़ी विभूत संपदाकरि सोभायमान महर्द्धिक देव भये, अर और भी मुनिराज यावज्जीव चमत्कारा तपश्चरण कर धर्मध्यानसहित अन्तविखैं समाधि मरणतैं प्राणनिका त्यागकरि पुण्यके उदयतैं अपने अपने पदके योग्य सौधर्मादिक अच्युनपर्यन्त षोड़शकल्पनिविखैं दिव्य विभूत अर दिव्यसुखके भोगनहारे बड़ी रिद्धीके धारी महर्द्धिक देव भये, अर केईएक अर्जिका शुद्ध सम्यग्दर्शनके प्रभावतैं स्त्रीलिंगकूं छेदकरि अपने अपने तपके अनुसार स्वर्गविखैं महर्द्धिक देव हुये. अर केईएक अर्जिका तप करि पुण्यके प्रभावतैं सौधर्मादि अच्युत कल्पपर्यन्त स्वर्गनिमें देव्या भई।

अब वे पद्मनाभादिक देव अंतर्मूहूर्त कालकरि संपूर्ण यवनकूं पाय सहजोत्पन्न दिव्य श्रेष्ठ वस्त्राभरणकरि मण्डित निलासंपुटके मध्य दिव्य कोमल सेजपरि तिष्ठते विस्मयवंत चित्तकरिसहित

तिस देवलोकसंबंधी परमसंपदाकूं देखि क्षणमात्रतैं अवधिग्यानकूं पाय करि तिस अवधिग्यानतैं तपका फल जानि अर समस्त पूर्व-भवका वृत्तांत जानिके धर्मकेविखं दृढ़ वुद्धिकूं धारते भये, ता पीछे वह देव परमधर्मको सिद्धके अर्थी अपने परिवार सहित स्फाटिक-मणिमई रमणीक श्रीजिनेंद्रके मन्दिर गए. तहां कोटि सूर्यतैं अधिक है तेज जिनके ऐसे जे अर्हंत परमेष्ठीनके प्रतिबिम्ब तिनकी नम-स्कार स्तुतिपूर्वक वड़ी पूजा करते भये, फिर वह देव चैत्यवृक्षनि-विखैं वड़ी विभूतकरि भक्तिसहित देवलोकसंबंधी आठ प्रकार उत्तम प्रासुक पूजन द्रव्यकरि अर्हंत भगवानकी प्रतिमाका पूजन करि वहुरि पंचमेरु नंदीश्वरआदि कुंडल- रुचक द्वीपसम्बन्धी तथा अढ़ाई द्वीपसम्बन्धी जिनमन्दिरनविखैं जाय अर्हंत देवके प्रतिबि-म्बनिकी परम पूजा करते भये, तापीछे विदेहक्षेत्रआदि भरत ऐरा-वत क्षेत्रविखैं तीर्थंकर सामान्य केवली गणधरदेव तथा आचार्य उपाध्याय साधूनके चरणारविंदनिकूं भक्तिसहित पूजन करि सीस नवाय नमस्कार करि जिन पंच परमगुरुनतैं सत्यार्थ धर्मरूप अमृतका पान करि महानश्रेष्ठ पुण्यका उपार्जन करि ते देव अपने अपने स्थान आये। तहांतैं देव तप संयमतैं उपार्जन करि समस्त दिव्य सुखनिकी खानि ऐसी परम विमान संपदाकूं अंगीकार करते भये। ए देव सदाकाल धर्मविखैं तत्पर एकसौ सत्तर क्षेत्रनिविखैं जाय करि धर्मके अर्थि तीर्थंकरनके पंचकल्याणकविखैं समीचीन पूजा करै है अर अवशय केवलीनकी भक्तीनकरि ग्यान निर्वाण कल्या-णकविखैं पूजन करै है, तथा गणधर आचार्य उपाध्याय परमसाधु

आदि समस्त मुनिराजनको पुण्यका उपजावनहारी पूजा करे है, इत्यादिक अनेक शुभ आचरण करि पुण्यका उपार्जनकरते वे देव पुण्यके प्रभावतैं हजारां देवांगनाकरि सहित नाना प्रकारके भोगनिकूं भोगवे हैं, अर देवलोकविखैं रातदिनका विभाग नहीं है। अर दुखदाई ऋतु नाहीं है, सुखदाई सास्वता सुखमासुखमा काल प्रवर्तें हैं, देवलोकविखैं दीन, दरिद्री, निर्धन, रोगी, दुर्भागी, दुखी, अर जाका वचन काहूंकूं भी नाही सुहावे ऐसा दुःखसे उन्मत्त कहिये मदोन्मत्त अर विकलांग इत्यादि और भी अशुभ सामग्री स्वप्नाविखैं भी कदाकाल नाहीं दीखे है, तो वह देव कैसे हे? देवलोकविखैं सर्व ही देव दिव्य लक्ष्मी मनोहर कांति अनुपम दिव्य धैर्यकरि सौभाग्यवान समस्त दुखनिकरि रहित सुखरूप अमृतके समुद्रके मध्य प्राप्त भये हैं, अर ते पद्मनाभादि समस्त देव कैसे हे? समस्त दुखनिकरि रहित है, अर नेत्र नाहीं टिमकारे हैं, महाप्रवीण सास्वत जिनेंद्रदेवके पूजाविखैं तत्पर हे। सात धातु, सात उपधातु, मलमूत्र पसेव, खेदकरि रहित दिव्य देहके धारी है, अर तीन हस्तप्रमाण ऊंचा है सुन्दर शरीर जिनका अर बाईस सागरकी है आयु जिनकी अर बाईस हजार वर्ष व्यतीत भये मानसीक आहारका सेवन करेहे, ग्यारह मास गए एक श्वास लेवेहे, अर अनेक गुणनिके भाजन अवधिग्यानके योगकरि षष्टम नरककी पृथ्वीपर्यंत शुभाशुभरूपी द्रव्यनिकूं जाने हैं, अर वे शुभपरिणामनिके धारक देव षष्टम नरकपर्यंत विक्रिया रिद्धिके बलतैं गमनागमनादि करवेकूं समर्थ हे। देवांगनाके दिव्यरूप सौंदर्यता मनोहर शृंगारसहित

नाना प्रकार नृत्य देखते अर अपसरानके मुखतैं मनोहर गान सुनते अर रत्नमई यह महल, भद्रशालादि वन मेरु कुलाचल आदि पर्वत अर असंख्यात द्वीप समुद्रनिविषै देवीनकरिसहित क्रीडा करते इच्छापूर्वक हर्षसहित गमन करते पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मके फलतैं पूर्वोक्त नानाप्रकार भोगनिकूं भोगते सुखसागरके मध्य प्राप्त भए कालकूं नाहीं जानतेसंते तिस अच्युत स्वर्गविखैं बाईस सागरपर्यन्त वे पद्मनाभादि देव सुखसूं तिष्ठते भए। या भांति ते पद्मनाभादि देव पुण्यके उदयतै परम सुखकी करणहारी देवलोकके विभूतिकूं पायकरि तिस अच्युत स्वर्गविखैं सागरांपर्यन्त उपमारहित भोग सुखनिकूं भोगवे है। ऐसे जानिकरि भो ग्यानीजन हो, सुखके प्राप्तीके अर्थि सकल सक्तिकरि एक भगवानभाषित जैनधर्मका सेवन करो, ऐसा उपदेश है, धर्म है सोसमस्त मनोरथादिकका उपजावनहारा है, अर धर्मात्मा पुरुष धर्मतैंहो, आश्रय किया है। अर इस धर्मकरिहो इहां सत्पुरुषनिके तीर्थंकारादि कल्याणरूप पदवी होहै, इस धर्मके अर्थी निरतर मेरा नमस्कार हो, अर जैनधर्मतैं शिवाय ओर कोऊ तीन जगतविखैं सुखकारी वस्तु नाहीं है। अर इस धर्मका बीज सम्यग्दर्शन हैं, अर धर्मविखैं निरंतर परिणामनिकूं धारण करता ऐसा जो मैं सकलकीर्त्ति मुनि ताके हे धर्मन्! चारि घातिकर्मनिका घातकरि, ऐसो सप्त विभक्तीनकरि संबोधन सहित धर्मका महिमा वर्णन करि धर्मतैं अर्हतपदका प्रार्थना करो, ऐसा इहां भावार्थ है।

इत्याचार्यसकलकीर्तिविरचित सुकुमालचरित संस्कृत ग्रंथ ताकी देशभाषामय वचनकाविखैं नागश्री सोमशर्मआदिका दीक्षाग्रहण अर स्वर्गगमनका है वर्णन जामैं ऐसा षष्टम सर्ग समाप्त भया।

चौपाई।

सकलतीर्थ हैं सिद्ध महेस, गणनायक पाठक परमेस।
सब साधुनके प्रणमूं पाय जैनधर्म निहचै उरलाय ॥१॥

अथानंतर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यकचारित्रकी परम विशुद्धताकूं प्राप्त भए अर निरतिचार चारित्रकरि परम शोभायमान ऐसे वह दोऊ सूर्यमित्र अग्निभूत महामुनि मोक्षमार्गकूं प्रवर्तावते अनेक देशनिविखैं यथेच्छ विहार करते एक दिन वाणारसी नगरी के बाहिर वनविखैं आये. तहां वे दोनों मुनि आत्मध्यानविखैं अत्यंत निश्चल चित्तकूं स्थापन करि चार घातियाके घातनेनिमित्त अदभुत योग धारते भए. मुक्तिरूप महलकी सीडीसमान क्षपक श्रेणीपैं आरूढ होय प्रथम शुक्लध्यान रूप खंगकरि आदिविखैं मोहरूप वैरीका घात किया. तापीछैं वह मुनि जयभूमिकूं पायकरि शेषघातिया जे ग्यानावरण दर्शनावरण अंतरायरूप वैरीनका द्वितीय शुक्लध्यानरूप शस्त्रकरि घात करते भये. कैसे है वह मुनिमोहनीके विजय करि पायाहै महान उदय जिनने ताही समय समस्त घातियानके घाततैं दोऊ मुनीनके लोकालोक प्रकाशी निजस्वभाव क्षायिकनवलब्धि आदि अनुपम सारभूत समस्त क्षायिकगुणनकरि-सहित केवल ग्यान प्रगट भया. तब इन्द्रादिक देव आयकरि गंधकुटी की रचना रचाय बड़ी विभूतितैं त्रैलोक्याधिपती तीन केवली भगवानको धर्मकेअर्थि महोत्सवसहित पूजन करते भए. तापीछे केवली भगवान, गणेंद्र, सुरेंद्र, नागेंद्रनिकरि सेवनीक दिव्यध्वनिकरि

सत्पुरुषनिकूं मुक्तिका मार्ग प्रकाशधर्मके प्रभावनाकेअर्थि अनेक नगर, ग्राम, देश, वनपर्वतादिकनिविखैं विहार करि निर्वाणसुख के प्राप्तीके अर्थि अग्निमंदिर नामा पर्वतपरि आये. तहां चतुर्थ शुक्ल-ध्यानके योगकरि अवशेप चार अघातिया कर्मनिकूं नास करि वे मुनिराज संसारके गमनागमन की क्रियारहित निर्वाण साम्राज्यकूं प्राप्त भए. तहां अनंत अविनाशी अनुपम वाधारहित हानिवृद्धिरहित सारभूत आतींद्रिय अक्षय सिद्धसुखकूं प्राप्त भए. सम्यक्त्वादि अष्ट गुणनिकरि भूषित ग्यानमूर्त्ति वे सूर्यमित्र अग्निभूति केवली भगवान मुक्ति लक्ष्मीसहित आत्मिकसुखकूं करते भये, भोगते भए. तिस-समय सौधर्मादि इंद्र अर वे पद्मनाभादि देव आयकरि निर्वाणके अर्थि तिन सूर्यमित्र अग्निभूत मुनिराजके निर्वाण कल्याणकको परमपूजा करते अपने अपने स्थानक गए.

अथानंतर इस जंबूद्वीपमें भरतक्षेत्रविखैं विनयवान, धर्मात्मा ग्यानी जीवनिकरि भव्या अवंती नामा देश सोभे है, जा देशविखैं केवली भगवान अर चतुर्विधसंघसहित अवधिमन पर्यायज्ञानी गण-नायक आचार्य वहुरि चरमशरीरी एकाविहारी मुनिराज मोक्षमार्ग की प्रवर्त्तीके अर्थि सासते विहार करे है, जा देशविखैं ग्राम, खेट, पुर, द्रोण, पत्तन आदि वडे वड़े नगर जिनमंदिरनिकरि अर धर्मात्मा महंत पुरुषनिकरि सोहे है, जा देशविखैं वनमें पर्वतनिमें नदीके तटनपैं तथा पर्वतनकी कंदरानविखैं सर्वत्र महा धीरवीर ध्यानी मुनिराज ध्यानसहित दीखे है, जहां केईक वीतरागी जीव वनमें जायकरि श्री गुरुके उपदेशतैं तप ग्रहण करे है, अर केई

धर्मात्मा धर्मके अर्थि सम्यग्दर्शनसहित श्रावकके व्रत अंगीकार करे है, जा देशविखैं केईक मुनि तपकरि निर्वाग जाय है, अर केई एक अहमिंद्र पदकूं पावेहै, वहुरि केईएक सोधर्मादि कल्पनिविखैं उपजे है, केईएक सम्यग्दृष्टी जीव देवपूजा, गुरुसेवा, शास्त्रभ्यास, संयम, तप, दान आदि श्रावक धर्मके प्रभावकरि स्वर्गविखौं इन्द्र होय है, अर केईएक सुपात्र दानतैं भोगभूमिकूं प्राप्त होय है, जो अवंती देश विखौं स्वर्गवाशी देव भी मोक्षके सिद्धाके अर्थि अपना जन्म चाहे है तिस देशविखौं और वर्णन कहां करिये ? कैसा है देश ? स्वर्ग मोक्षका कारण है, इत्यादि पूर्वोक्त प्रकार वर्णनसहित तिस देशका मध्य भूतलविखौं सुखसंपदाको खानि परम रमणीक उज्जयनी नामा पुरी है, जो पुरी बहुत ऊँचे दरवाजे, कोट, खाई, पडकोटादिकनि-करि अति दुर्गम अनेक सूरवीर सुभटनिकरि भरी अयोध्यापुरी समान सोहे है, जा नगरीविखौं नानावर्णमई अति उत्तंग जिनेंद्र भगवानके मन्दिरनिकी पंक्ति सोहे है ते मानूं उत्तंग धर्मकी खानि ही है, कैसे हैं जिनमन्दिर ? सुवर्ण रत्नमई नानाप्रकार शिखरनि-विखौं धुजानिकरि अर आवते जावते भव्य जीवनके समूहकरि वहुरि गीत, नृत्य, वादित्रनिकरि अर स्तवन, पूजन, स्वाध्यायादि-कनिकरि मानूं मूर्तिवान धर्मही है, तिस उज्जयिनी पुरीविखैं पुण्य-वंत पुरुष प्रातःकाल सेजतैं उठिकरि आदिविखैं तो सामाइक अर पंचनमस्कारका जाप आदि धर्मकार्य करैं, अर ता पीछैं गृहकार्य करैं, जातैं धर्म, अर्थ, काम, अर मोक्ष ए च्यार सत्पुरुषनिके पुरु-षार्थ है, जिनकी आदिविखौं सर्व अर्थ सिद्धिका दायक भगवान

भाखित धर्म ही है, बहुरि जिनमन्दिरनिविखैं अथवा अपने घर विखैं चैत्यालयनविखैं तीर्थंकरनके प्रतिबिम्बनका पूजनकरि अर मध्यान्हसमय ग्यानी जीव पात्रदानके अर्थि बारम्बार घरको द्वारा प्रेक्षण करे है, बहुरि अपरान्हसमयविखैं दिनमें उपार्जन किए जे पाप जिनके हानिके अर्थि अर पुण्यके प्राप्तीके अर्थि अपनी सक्तिप्रमाण हमेसा कायोत्सर्गादि शुभ क्रिया करे है, अर पुत्रनिके जन्म तथा विवाहादिक शुभ मंगलीक कार्यको वृद्धीके अर्थि जिनेंद्र भगवानको पूजन करे है, देवी, दिनाड़ी, क्षेत्रपाल, गजानन, देहलीपूजन रातीजागा, सीतलाआदि कुदेवनिकूं स्वप्नाविखैंभी नाहीं पूजे है, इत्यादि पूर्वोक्त शुभकर्मके समुदायकरि अर व्रत आचार शील दान पूजनादिकरि तिस उज्जयिनी पुरीकी प्रजा रातदिन धर्मका उपार्जन करे है, तिस धर्मका उपार्जन करि तिन पुण्यवान जीवनिके उत्तंग महलनिविखैं अनेक संपदा अर सारभूत सुख पैंड पैंडौं प्रगट होय है ।

इत्यादि पूर्वोक्त वर्णनकरिसहित तिस उज्जयिनी पुरीका पति श्रीमान धर्मात्मा वृषभांकनामा राजा भया, सो वृषभांक राजा सारभूत जिनधर्मके आचरण करि अर सारभूत क्रांति कीर्ति शुभ लक्षणनिकरि, बहुरि देव, गुरु धर्मके सेवन करि मानूं साक्षात् मूर्तिमान धर्मका चिन्ह ही है, अर तिस ही उज्जयिनीपुरीविखैं महान धनवान, अर शुभ लक्षणनिकरि परिपूर्ण, धर्मकार्यविखैं अगवाणी, अर शीलव्रत उपवासादिक तिकरि बहुरि सुपात्रनिके अर्थि दान देने करि अर जिनेंद्र भगवानकी पूजनादिककरि विभूति

संपदा करि मानू मूर्तिवान पुण्य ही है ऐसा परम श्रावक सुरेन्द्रदत्त नाम शेठ. ताके मनोहर दिव्यरूपकी खानि, कल्याणकी मूर्ति, पति में परम अनुरागिणी पांचू इन्द्रियनके आनन्दके कारण ऐसी यशो-भद्रानामा सेठाणी भई, अर स्वजन परजन सारभूत सुख, बहुरि अनेक कोटि सुवर्ण रत्नादिक भये, वा यशोभद्रा सेठाणी हृदयविषैं ऐसे विचारि करि निरन्तर विषाद करैं, जो मेरे घरमैं पूर्वोपार्जित पुण्यका फलतैं सफल सम्पदा है अर स्वजन परिजन भी बहुत हैं परन्तु कुलका दीपक पुत्र नाहीं एक पुत्र बिना निरफल वेलिसमान पुष्पनैं धारण करती ऐसी पुत्रवंती कुलवंती नायकानके मध्य शोभा कूं नाहीं पाऊ हूं, धन्य है वह नायका जे पुत्रके मुखरूप चन्द्रमाका अवलोकन करि सदा प्रसन्न रहे है, ऐसे वा सेठाणी विषाद करैं, एक दिन तीन ग्यान आदि अनेक गुण रत्ननिके सागर, जगतके हितकारी मुनी, श्रावक देवनिकरि वंदित, कल्याणरूप संघकरि-सहित, ऐसे वर्द्धमाननामा मुनिराज धर्मात्मा जीवनिके पुण्यकरि मेरे भव्य जीवनिके संबोधवेकूं उज्जयिनीके वनमें आये, तिनके आगमनकूं जानिकरि राजा वृषभांक आनन्द घोषणा दिवाय चतु-रङ्ग सेना करि वेष्टित मुनिराजके वंदिवेकूं निकस्या, राजाकी भेरीका शब्द आजि कौन कारनतैं भया ? तब सखी कही, आजि वनके मध्य महामुनि पधारे है अर तिनकी वन्दनाकूं अनेक वादि-त्रनिके नादकरि महोत्सवसहित राजा वृषभांक जाय है, ये वचन सुनकर वा सेठाणी यशोभद्रा धर्मके सिद्धिके अर्थि अर मनोवांछित फलकी प्राप्तीके अर्थि पूजनकी सामग्री लेय मुनिके समीप गई, तहां

संघ सहित विराजमान वर्द्धमान मुनिराजकूं नमस्कार करि, पूजन करि यशोभद्रा सेठाणी मुनिराजके समीप बैठी, कैसे हैं मुनिराज ? इन्द्र नरेन्द्र नागेन्द्रादिकनिकरि वन्द-नीक पूजनीक है, मुनिराजके मुखकी वानी स्वर्ग मुक्तिका कारण, इन्द्र नरेन्द्र नागेन्द्रादिकनिकी सम्पदाकी दायिक, वहुरि समस्त कल्याणनिका कारण जिनेंद्र भगवान करि भाषित, दयामई, मुनिश्रावकके भेदतैं दोय प्रकार धर्म श्रवण करि सेठाणी यशोभद्रा हात जोर सिर नवाय नमस्कार करि मुनिराजकूं ऐसे पूछती भई, हे भगवान, इहां मेरे पुत्र होगा कि नाहीं सो आप कृपा करि कहो, तब मुनिराज याभांति कहते भये, हे भद्रे, महाधीर, वीर, दिव्य, रूपवान, गुणनिका सागर, महान पुण्यके फलका भोक्ता, समस्त जगतके मान्य, सकल कार्यके करणेविखैं महान सामर्थ्य-वान ऐसा पुत्र तेरे होगा, परन्तु तेरा पति सुरेन्द्रदत्त संसारके सुख-निविखैं अत्यंत उदास है अर तपोवनप्रति जानेकी वांछा करैहै, सोउ पुत्रके अभावतैं नाहीं जाय है, सो धर्मात्मा सुबुद्धी जौ लौं अपने पुत्रका मुख नाहीं देखेगा तौ लौं धन सम्पदाके मोहतैं घरमें तिष्ठैगा; पीछें पुत्रका मुख देख करि उत्तम गुणनिका आकर सेठ सुरेन्द्रदत्त सकल संपदाका अर धारा त्याग करि निर्दोष तप ग्रहण करेगा ,अर तेरा पुत्रभी अति धर्मात्मा धर्मका सेवनहारा जौं लौं दिगम्बर मुनिके वचनादिक प्रगट नाहीं सुनैगा तौ लौं अपने घरमें रहेगा, अर मुनिके दर्शनमात्रकरि अथवा मुनिके प्रत्यक्ष वचनके सुनवेकरि सो तेरा पुत्र धीरवीरनिके गोचर दुर्द्धर तप अवश्य

ग्रहण करेगा, याभांति वर्द्धमान मुनिराजके वचन सुनिकरि वा सेठानी यशोभद्रा आपके इष्ट अनिष्टादिके संयोगतैं मनविखैं हर्ष अर विषादसहित भई, भावार्थ-पुत्र होयगा यहतो हर्ष भया, अर पुत्रका मुख देखते ही सेठ दीक्षा ग्रहण करसी यह विषाद भया, तब कितनेक दिननिकरि पुण्यका उदयतैं सेठानीके गर्भाधान जाणेगा तो अवश्य तप ग्रहण करेगा, ऐसे जानिकरि सेठके तप ग्रहणको भयकरि वा सेठाणी यशोभद्रा सेठ आदि समस्त स्वजननानके अति प्रच्छन्न वृत्तीकरि घरके कूणेविखैं तिष्ठती अपने गर्भकूं वढ़ाया, भावार्थ-काहूकूं भी गर्भ नाहीं जनाया, अनुक्रमतैं नवमास पूर्ण भये पीछे सेठाणी रमणीक भूमिग्रह विखैं प्रवेस करि दैदीप्यमान कांती का पुंज ऐसा पुत्र जनती भई. तब प्रसूतके वस्त्र अर ति बालकके मलकरि भरे वस्त्रनिकूं घरतैं वाहिर सरोवरके पार दासी धोवैथी ताहि देखिकरि कोई एक विरामण चित्तविखैं ऐसे विचारता भया, अहो इहां यह सुरेन्द्रदत्त सेठ ही पुत्ररहित है सो आजि इस सेठके अवश्य पुत्र भया है, ऐसे वस्त्र प्रक्षालनरूप अनुमान ग्यानकरि पुत्र की उत्पत्ति जानि सो विरामण हर्षसहित सेठके समीप आयकरि आश्चर्यकारी वचन ऐसे कहता भया, कैसा है विरामण ? वेणुकरि रुकि रह्या है दाहिणा कर जाका. भावार्थ-आशीर्वाद देणेका दक्षिण हाथ वीणाकरि रुक्याथा तातैं आशीर्वाद दिये विनाही आनन्दमैं कहता भया, भो श्रेष्ठिन् तेरे अखण्ड पुण्यके प्रभावकरि आज अवश्य पुत्र जन्म्या है, यह वचन विरामणके सुण सेठ हृदयविखैं परम आनन्दकूं प्राप्त भया, विरामणके वचनतैं सुरेन्द्रदत्तसेठ अदंन

आश्चर्यकूं प्राप्त होयकरि, अर हर्षसहित अपने पुत्रका मुख अवलोकन करि, वहुरि विप्रामणकूं वहुत सम्पदा देय, अर गृहपुत्रदारादिकनिकरि सहित सकल सम्पदाकै त्यागकरि अर संसार देहभोगादिविखैं सर्वत्र वैराग्यकूं पायकरि तपके अर्थि वनविखैं गया, तहां श्री गुरुके चरणारविंदकूं नमस्कार करि सो सुरेन्द्रदत्तशेठ समस्त परिग्रहका त्याग करि मनवचनकायकी विशुद्धता करि हर्षसहित मुक्तीके अर्थि दीक्षा ग्रहण करताभया, तापीछैं सुबुद्धी सुरेन्द्रदत्तमुनि अपनी सक्तीकूं प्रगटकरि स्वर्गादि मुक्ति पर्यंत सुखका दायक संयमसहित दुर्द्धर घोर तप करवेका आरम्भ करता भया।

अथानंतर यशोभद्रा सेठाणी जिनालयविखैं जिनेन्द्रदेवनिका पूजनादि महोत्सवकरि अर वस्त्राभरणके दानकरि समस्त सुजनानकूं संतोषि तकरिवहुरि नानाप्रकार गीत वादित्र नर्तकादिकनिकरि सकल कुटुम्ब सहित पुत्रके जन्मका वड़ा उत्सव करती भई, तापीछैं अन्यदिनविखैं वालकको माता यशोभद्रा अपने स्वजननिकरि सहित अत्यन्त कोमल शरीरका अवयवपणातैं वालकका सुकुमाल ऐसा नाम प्रगट किया, अपने पुत्रका सुकुमाल ऐसा नाम प्रसिद्धकरि पुण्यके प्राप्तीके अर्थि जिनेन्द्र भगवानके मंदिरविखैं अर अपने घरके चैत्यालयविखैं वड़ो विभूतिकरि पूजनादि महोत्सव करावती भई, वालचन्द्र समान अत्यन्त सुन्दर सो वालक समस्त परिजनके नैननिके परमानन्दकारी स्फुरायमान कांति अर मनोहर आलापनकरि अर शुभ अंगोपांग अवयवनिकरि मधुर गुणनिकरि वहुरि अपनी अवस्थाके योग्य मधुर पयपानादिनिकरि अनुक्रमतैं सारभूत

वस्त्राभरणनिकरि ज़गतके अत्यन्त प्यारा ऐसा सुकुमाल' दोयजका चन्द्रमा समान क्रमतैं वढ़ताभया, तापीछैं वह सुकुमाल अत्यन्त मनोहर अंग अर स्वभावतैंही सुन्दर आकृतिका धारक, मंद मुलकनिकरि अर वालपनेकी शुभचेष्टानकरि माता आदि समस्त परिजनकूं अत्यन्त हर्ष उपजावता, वालपनाकूं उलंघि वहुरि कुमारपनाकूं पायकरि, दिव्य आभूपण शुभ लक्षणनिकरि तथा समीचीन कांति दीप्त तेज आदि गुणनिकरि सो सुकुमाल कुमार देवकुमारसमांन अत्यन्त सोहे है, ता समय जैसे मेरा पुत्र सुकुमाल इहां दिगम्वर मुनिकूं कदे भी नहीं देखैं तैसा उपाय शीघ्र ही करूं ऐसे विचारकरि सुकुमालकी माता यशोभद्रा नानारत्नादिकनिकरि जड़ित एक सुवर्णमई सर्वतोभद्रनामा उतंग महल वनाया, अर तिस सर्वतोभद्र महलके चहूं ओर वड़ी संपदाकरि संयुक्त सुवर्णमई रूपामई वत्तीस महल और वनाये, फिर मोहकरि आँधी भई ऐसी यशोभद्रा सेठाणी सुकुमालकी माता द्वारपालजनादिकनिकरि अपने घरविखैं दिगम्वर मुनिराजनिका आगमन मनैं कराया, भावार्थ—द्वारपालनिसैं ऐसे कही जो दिगम्वर मुनिराजकूं मेरे महलनिविखैं मति आवने द्यो, यह मेरी आग्या है. अहो मोहकरि अंध भया है चेत कहिये ज्ञान जिनके ऐसे मोही जीवनिके इहां विचार कहां है ? भावार्थ—मोही जीवनिके मोहके उदयतैं विचार नाहीं अर कार्य अकार्य विचार किये विना धर्म कैसे प्रगट होय ? जाके परमार्थस्वरूप कार्य अकार्यका विचार नाहीं ताकें धर्मका लेसहू नाहीं है. अब तिन सौधनिविखैं यथेच्छ क्रीड़ा करता ऐसा सुकुमाल कुमार दिग-

रात संबंधी काल भेद अर मनुष्यादिकनिके जातिभेद बहुरि शीत आतापकूं कदेभी नाहीं जानता, समस्त दुःखनिकरि रहित, महान रूपवान जैसे विमानविखैं धरणेन्द्र, इंद्र वृद्धीको प्राप्त होय तैसें अनुक्रमतैं महलनिविखैं वृद्धीकूं प्राप्त भया, तब यौवन अवस्थाकूं पायकरि मनोहर सुगंधायमान पुष्पनिकी माला सुन्दर वस्त्राभरण-निकरि अर कांत तेज मधुर वचन अर शंख चक्रादि शुभलक्षण तथा तिल तुस आदि शुभ लक्षणनिकरि महान भोग उपभोगकी सामग्रीकरि शुभ आकृति, शुभही है गुणनिके समुदायनिकरि तथा परम लावण्यता सौंदर्यता आदि गुणनिकरि निरन्तर देव समान शोभाकूं धारण करेहै, तब यशोभद्रा सेठाणी बड़े बड़े श्रेष्ठीनतैं चतुरिका, चित्रा, रेवती, पद्मिनी, मणिमाला, सुशीला, रोहिणी, सुलो-चना, सुदामा आदि कन्यानकी जाचनाकरि कन्याकूं अपने घर ल्यायकरि अर महलविखैं रमणीक विवाहमंडपकी रचना कराय शुभलग्नविखैं बड़ी विभूति करि सहित तिन कन्यानतैं अपना पुत्र सुकुमालका विधि पूर्वक महलके ऊपरि भली भांतितैं विवाह करती भई, अर महलके बाहर आये ऐसे अपने बन्धुजन तिनकरि सहित गीतवादित्रनिकरि विवाहका बड़ा उत्सव किया, अर ताही समय यशोभद्रा शेठाणी सुकुमालकी बत्तीस वनितानिकूं भोग सुखके प्राप्तीके अर्थि जे सर्वतोभद्र महलके चहुंओर बत्तीसमहल पहले बणा-याथा, ते एक एककूं एक एक महल दिये, तिस सर्वतोभद्र महल-विखैं पुण्यरूप लावण्यताकी खानि ऐसी जोड़े बत्तीस स्त्रियांकरि सहित महान् पुण्यके उदयतैं निरंतर इंद्रसमान भोग भोगता ऐसा

सुकुमाल कुमार चिंतारहित निश्चिंत सुखसागरके मध्य तिष्ठता गये कालकूं नाहीं जानैहै, एक दिन कोई एक व्योपारी देशांतरतैं आय राजा वृषभांककूं एक अमोलिक रत्नकम्बल दिखाया, सो राजा वृषभांक तिस रत्नकंबलकूं देखि बहुत मोलका जानि बहुत द्रव्य देनेकी सक्तीके अभावतैं ताही समय व्योपारीकूं देदिया।

भावार्थ—रत्नकंबलके मोल जोग्य राजाके घरमें द्रव्य नहीं, तब वो व्योपारी नृपतैं रत्नकंबलकूं लेय शीघ्रही जायकरि यशोभद्रा सेठाणीकूं दिखाया, अर द्रव्य लेनेके अर्थि मोल कह्या, सेठाणी रत्न कंबलकूं अपना पुत्रकै योग्य जानि तिस व्योपारीकूं यथायोग्य बहुत द्रव्य देय शीघ्रही महलविखैं अपना पुत्रकै पास भेज्या, सुकुमालकुमार रत्नकंबलकूं भारया अर कठिन देखि कही यह तो मेरे जोग्य नहीं, ऐसे कहिकरि करतैं डार दिया, तब यशोभद्रा रत्नकंबलके खंडन करी सुकुमालकी बत्तीस वनितानिके सुन्दर पगरख्यां कराय दई, एकदिन सुकुमालकी स्त्री सुदामा पावनितैं पगरखी खोलि अपने महलके शिखरपै बैठि कितनेक काल दिशा अवलोकन करती पश्चिमद्वारके मंडपविखैं तिष्ठेथी, ताहीसमय गृद्धपक्षी महलमें प्रवेश करी मांसके भासतैं एक पगरखीकूं चूंचतैं बडाय फेर आकाशतैं उडकरि वृषभांक राजाका महलका शिखरपै बैठा, खानेके अर्थि अतिकोपतैं अपनी चूंच करि पगरखीके घात करतां संता खानेकूं असमर्थ होयकरि राजमंदिरविखैं गेरता भया, तब राजा वृभांक रत्नकंबलकी पगरखी देखि अचिरजवान हुवा संता कहीपे, यह रमणीक पगरखी कौनकी है ? ऐसैं काहू निकट-

वर्ती पुरुषने पूछी, आज्ञाके वचन सुनकरि निकटवर्ती पुरुष कही, हे राजन् यह रमणीक पगरखी सुकुमारके कांताकी है, कैसा है सुकुमार? महान् लक्ष्मीवान्, महान् सुख संपदाकरि इंद्रसमान शोभायमान है, ऐसे निकटवर्ती पुरुषनिके वचन श्रवणमात्रतैं कौतुक करि पाया है कौतुक जानैं ऐसा नृप वृषभांक सुरेन्द्रदत्तसेठका पुत्र महालक्ष्मीवान् ऐसा सुकुमालके देखवेकूं शीघ्रही चल्या, तव यशोभद्रा सेठाणी सुकुमालकी माता नृपकूं आवता जानिकरि नृपके सन्मुख जाय वड़ी विभूतिकरि अपनो घरके मध्य नृपको प्रवेश करावती भई, तहां नृपकूं रत्नजड़ित सुवर्णका सिंहासनपै वैठाय वहुत भेट नृपके आगैं धरि सुकुमालकी माता यशोभद्रा सेठाणी नृपकूं ऐसैं पूछती भई, भो देव, आपके आगमनकरि आजि तुमनै मेरा घर पवित्र किया, परंतु अवार तुमारे आगमनविखैं कारण कहा है सो कृपाकरि कहौ, तव वृषभांक नृप ऐसें कही, हे भद्रे, मैं केवल तेरे पुत्रके देखनेके अर्थि आया हूं. और कछूभी कारण नाहीं, तव वा यशोभद्रा सेठाणी महलके मध्य खणविखैं नृपकूं वैठाय हर्षसहित अपना पुत्रकूं ल्याय दिखावती भई, राजा वृषभांक सुकुमालके विस्मयकारी रूपकूं अतिशयकरि देखिकर प्रसन्न होय अत्यन्त सन्मानकरि सुकुमालकूं आधा सिंहासनपैं वैठाय लिया, तव यशोभद्रा महीपतितैं ऐसी प्रार्थना करतीभई, भो देव, आजि म्हारे घर भोजन करि आपनैं जाइवो योग्य नाहीं है, ऐसी सेठाणीने प्रार्थना करी राजावृषभांक सुकुमालसहित तहां सुवर्णके थालमें परम मनोहर भोजन किया, भोजन किए पीछैं नृप सेठाणीकूं ऐसैं कहता भया,

भो कल्याणरूपिणी, इस सुकुमालकै निंद्यनीक तीन व्याधि कहा है ? तिनके मेटनेके उपायविषैं तूं कैसे मंद है ? तब सेठाणी कही इनै व्याधि कहा है ? तब बहुरि नृप कहता भया, एकतो आसनकी दृढ़ता नाहींचलायमानपना है; दूजैं प्रकाशविषैं नेत्रतैं जल श्रवैहै; तीजैं भोजनविषैं एक एक चांवल खाय है, ए वचन सुनि सेठाणी सुकुमालकी माता यशोभद्रा कही, हे राजन्, जो आपनै तीन व्याधि कही ते तौ व्याधि इस सुकुमालकै कदेभी नाहीं है, यह सुकुमाल अत्यन्त कोमल दिव्य शैय्याविषैं शयन करैहै, अर अत्यन्त कोमल गद्दीका तथा गालीचानिपरि सदाकाल सुखसूं बैठे हैं, अर आजि आपकी साथी सिंहासनपै बैठ्या, बहुरि हमनै महालकै अर्थि इस सुकुमालके मस्तकपै बहुत सिरस्यूं क्षेपो, ते सिरस्यूंके कण इहां आवार इसके सुखासकविषैं परे; सो तिस सिरस्यूंका कर्कशपनां करी यह सुकुमाल चलासन भया, बहुरि इस पुण्यात्माने देदीप्यमान मणिमई मन्दिरनिके मध्य एक रत्ननिकी प्रभाकूं छांडि और प्रभा कदेभी नाहीं देखी है, अर आजि हमने आपकी दीपकनिकरि आरती उतारो सो आरतीके प्रतापरूप प्रभाके देखनेकरि इन अत्यंत सुखियाकै दुःखके उत्पत्तिका कारण नेत्रनितैं शीघ्रही जल स्रवना भया, बहुरि दिनके अस्तविषैं सरोवरविषैं आद्रंतकमलकी कर्णिकामैं धोये हुए भीजे मनोग्य तन्दुल धरिदेवे हैं फिर प्रभातसमय तिन तन्दुलनिका मनोहर अति कोमल सुगन्धायमान भात, यह कुमार केवल भोजन करै है, सो उन तन्दुलनिके अल्प पानतैं भोजनविषैं दोउनके तृमापनां नाहीं जानिकरि आजि हमनै तिन

तन्दुलनिके मध्य सुन्दर और तन्दुल क्षेपे है, सो सुन्दर मिले हुए तन्दुलनिकूं भी भोजन इस कुमारनै आजि अरुचिसैं कीना हैं, तिस सुकुमालकी वार्ताके श्रवणमात्रतैं राजा वृषभांक हृदय विर्खैं अत्यंत अचरजवान भया, वहुरि सेठानीनैं भेट किये जे रत्न आभ- मनोग्य वस्त्र तिनकरि सुकुमालको पूजा करि, वहुरि समीचीन सराहिवे जोग्य वचननितैं प्रशंसाकरि, अर यह अवन्तो सुकुमाल है ऐसा और दूजा नाम सत्पुरुषनिके मध्य प्रसिद्ध करि, राजा वृषभांक अत्यन्त आनन्दसहित अपने राजमन्दिर गया, अथानन्तर तोन जगतविर्खैं विख्यात है कोर्त्ति जाकी ऐसा अवन्तो सुकुमार पुण्यके उदयतैं अर मनोहर भोग भोगवता तिस सर्वतोभद्र महलहो- विर्खैं सुखसूं तिष्ठता भया, याभांति पुण्यके उदयतैं इहां अनुपम परम सम्पदाकूं पायकरि सुरेन्द्रदत्त सेठका पुत्र यह अवन्ती सुकु- मार दुःखरहित अनुपम सारभूत महान् सुखनिकूं अर मनोहर दिव्य भोगोपभोगनिकूं भोगवे है, कैसा है अवन्ती सुकुमार ? वड़े वड़े राजादिकनिकरि पूजनोक प्रशंसा जोग्यहै, ऐसैं जानिकरि विभव सुखके अर्थि निपुण ज्ञानो जन हो, तुम इहां अपनी सक्तीप्रमाण मनवचनकायको शुद्धता करि वड़े जतनतैं निरन्तर सर्वज्ञभाषित परम धर्मका सेवन करो, जिनधर्मके सेवनकरि ज्ञानी पुरुष तीन जगतविर्खैं सारभूत सुखनिकूं पायकरि तीर्थंकरादिकनिके परम कल्याणकूं पावे है, वहुरि क्रमतैं अनुपम अविनाशी सुखनिकी खानि ऐसा जो निर्वाणपद तांहि पावे है ॥

इत्याचार्य श्रीसकलकीर्ति विरचित सुकुमाल चरित्र संस्कृत ग्रंथ ताकी देशभाषामय वचनिकाविर्खैं सुकुमालकी उत्पत्ति अर सुखानु- भवका है वर्णन जामैं ऐसा सप्तम सर्ग समाप्त भया।

चौपाई ।

तीन जगतपति पूज्य अनूप श्रीमन् तीन जगतगुरुभूप।
तीन भुवनपति सेवतपाय प्रणमू परमइष्ट शिरनाय ॥

अथानन्तर एक दिन इस सुकुमालका मामा धर्मात्मा जगतका हितकारी अवधि ज्ञानी यशोभद्रनामा महामुनि अपना अवधिग्यान-करि पुण्यमान सुकुमालकी अत्यन्त अल्प आयु जानि पूर्वभवतैं आया जो सम्बन्ध ताकू स्नेहकरि ऐसैं चितवन करते भए, अहो इस सुकुमालकी अति दुर्लभ सम्पूर्ण आयु तो धर्मके सेवनकरि रहित ऐसैंही गई, अर तपधर्मका कारण किंचित् अति अल्प आयु अवशेष रह्या है, वहुरि अव तिसके घरविखैं सकल संयमोका गमनहू नाही पाइये है, तातैं और कोई सांचे उपाय करि तिस सुकुमालके अधि संयम धूगा, याभांति विचार करि यशोभद्रनामा मुनि तिस सुकु-मालके सम्बोधनके निमित्त चतुर्मासिसम्बन्धी भला योगका ग्रहणके शुभदिन विखैं सुकुमालके निकट उपवनके मध्य शोभायमान उत्तुंग त्रिजगद्वंद्य ऐसा चैत्यालयविखैं आये, ताही समय वनमाली जाय-करि सुकुमालकी माताप्रति ऐसैं कही, हे मात, उपवनके चैत्यालय-विखैं योगराज आये हैं, यह वचन मालीके सुनकरि तिस जिना-लयविखैं शीघ्रही जाय तहां पुण्यरूप अरहन्त देवके प्रति वंदनिका अर अपनां भाई यशोभद्र मुनिराजका पूजन करि, प्रणाम करिदा वा यशोभद्रा सेठाणी ऐसैं कहती भई, हे नाथ, इहां मेरे प्राणसमान एकही पुत्र है, सो तुमारे वचन श्रवण मात्रकरिही तुरत संयम ग्रहण

करैगा, तब मरणका कारण आर्तध्यान मेरे अवश्य होयगा, ऐसें जानि भो दयानिधान, मोपैं दया करि इहां तैं और स्थानप्रति शीघ्रही जावो, तब मुनिराजऐसें कही, हे भद्रे, आजि योगका दिन वर्तै है, तातैं हमने कहीं भी स्थानक गमन करवो जोग्य नाहीं, केसे है हम ? जीवनिकी दया ही है अर्थ कहिए प्रयोजन जिनकै, तातैं चतुर्मासके योगकरि इहांही तिष्ठूं हूं यामें और तरह नाहीं, ऐसें कहि करि शीघ्रही अन्तरंग बहिरंग उपाधिसहित देहका ममत्वका त्याग करि सर्वत्रही समतारूप है भावजिनके ऐसे यशोभद्र मुनिराज सूके ठूंठ समान अडिग होय ध्यानका अवलम्बन करि सहित खड़े तिष्ठे तिस जिनमन्दिरविषैंही धर्मध्यानकरि आत्मतत्वके विचारतैं कायोत्सर्गसहित चार महीने व्यतीत करि, सो धीरबुद्धी यशोभद्र मुनि, कार्तिक सुदि रात्रीके चौथे पहर चातुर्मासको क्रिया करि; योगका त्याग किया, ता समय अवधिज्ञानरूप नेत्र करि सुकुमालकूं निद्रारहित जानि ताके सम्बोधनके अर्थि वह यशोभद्र मुनिराज अमृतसमान मधुर वाणी करि समस्त त्रैलोक्य प्रज्ञप्तिका वर्णन करवेका प्रारम्भ किया, तापीछैं प्रथमही वैराग्यकेनिमित्त अधोलोक का वर्णन करि तापीछैं मध्यलोकका कथनकरि अनन्तर स्वर्गनका वर्णनकरि बहुरि अच्युत स्वर्गविषैं पद्मगुल्म विमानमैं पद्मनाभि देवकी विभूति संपदाका मधुर वाणीकरिवेकूं वह यशोभद्र मुनिराज उद्यमी भये, तब तिस पद्मनाभ देवकी विभूति सम्पदाके श्रवणमात्र करि सो अवन्ती सुकुमाल जातिस्मरणकूं प्राप्त भया, सो तिससमणतैं अपने समस्त पूर्व भव जानिकरि अर संसार

शरीरभोग सुखनिविखैं परम वैराग्यकूं पायकरि अत्यन्त विरक्त भया, सुकुमाल या भांति चिंतवन करता भया, अहो जो मेरा जीव अनुपम परम रमणीक स्वर्गसम्बन्धी भाग सुखसागरपर्यंत चिर-काल भोगे तिनकरि हूं तृप्तिकूं नाहीं प्राप्त भया, तो, सो मेरा जीव दुःखकरि मिले निंदनीक पराधीन अर शरीरकै पीड़ाके उपजावन-हारे ऐसे मनुष्य पर्यायके भोग सुख तिनकरि कहा तृप्तिनैं प्राप्त होय हैं ?

भावार्थ—तृप्तीकूं नाहीं प्राप्त होयहै, कदाकाल दैवयोगतैं इंध-नकरि अग्नि तृप्तकूं प्राप्त होय, अथवा नदीनके प्रवाहकरि समुद्र तृप्ति होय, वहुरि धनके संग्रहकरि लो। शान्ति होय, तो होहू; परन्तु यह आतमा अनन्त जन्मकरि भोग जे त्रिलोकसम्बन्धी नानाप्रकारके मनोहर विपयसुख तिनकरि काहूकालविखैंभी तृप्ति नाहीं भया, यातैं जे अत्यन्त कामी पुरुप सुखनिकरि तृप्तिकूं वांछै है ते अज्ञानी अपथ्य सेवनिकरि रोगकी शांति चाहे हैं, अथवा तैलकरि अग्निकूं शान्त करी चाहै है, जा शरीरकरि कामसम्बन्धी पीड़ाकी शान्तिके अर्थि इहां विपयसुख भोगिए हैं सोई शरीर मल, मूत्र, मांस, रुधिर मज्जादिककरि भरया सारसहित क्षणभंगुर है, हाय हाय में मूढ़ अज्ञानी तपश्चरणविना अतिशयपणांमकरि इस देहकूं इतनें काल-पर्यंत निरन्तर विपयसुखनिकरि वृथा ही पोख्या, वह शरीर यद्यपि वसनभूपनादिकनिकरि बाहर सुन्दराकार दीखैं हैं, तथा अभ्यंतर-विखैं मलमूत्रादि धातु उपधातूनकरि भरया अत्यन्त घृणास्पद है, अर आजिमें सम्यग्ज्ञानकूं प्राप्त भया हूं सो जगत निंद्य इस शरी-

वरकूं तपरूप अग्नितैं शोषणकरि शिवरमणीका साधन करूं, अर यह क्षणभंगुर रामा समस्त पापनिकी खानि मनुष्यके भक्षविखैं काली नागणीसमान हैं, अथवा पुरुषनिके बन्धनकूं पायनिविखैं सांकल वा वेड़ीसमान है, कैशी है रमा ? अत्यन्त अपवित्र महा निंद्यनीक नरक धराके प्रवेश करिवेकूं गैलीसमान है, अर ज्ञानी पुरुषनिकरि निंद्यनीक वन्दीखानासमान व्रतादि धर्मका विनाशक अनन्त दुःख अर अनेक पापनिको खानि है, अर यह अत्यन्त विनाशीक आपदासमान सम्पदा मोहकी उपजावनहारी समस्त अनर्थ की कारण पापको मूल है, अर महानिंद्य विषय यह कुटम्ब कंठविखैं सांकलसमान पुरुषनिकूं पापादिक कार्यके प्रेरक, धर्मका विध्वंस करवावाला है,अर यह जोवन जराकरि ग्रसित है, वहुरि यह अपनी आयु यमराजका मुखविखैं तिष्ठे हैं, अर सुख है सो दुःख केभारकरि व्याप्त है, वहुरि समस्त संसार क्षणभंगुर है, अर पांचूं इंद्रियरूप तस्कर मनुष्यनिके धर्मरूप रत्नके चारटै हैं, वहुरि समस्त विगारके कारण आत्माके असाध्य शत्रु है, हाय हाय सम्पदारूप फांसीकर वेष्टित अर स्त्रीरूप सांकलकरि सर्वांग वंध्या घररूप वन्दीखानामैं तिष्ठता ऐसा जो मैं सो इहां इतने दिन वृथाही खोए, आजिमैं योगीराजकी परमार्थरूप वचन श्रवणतैं शीघ्रही प्रवुद्ध भया, सो मोहरूप फांशिकूं शीघ्रही छेदन करि जतीको संयम ग्रहण करूं, जो लौ देहमैं जरा नाहीं व्यापै, अर आयु क्षीण नाही होवे, वहुरि सकल इन्द्रियनकी मंदता नाही होय, तौलौं मनुष्यनकैं तपका करणाही हितकारी है, जौलौं वुद्धीकी प्रवोणता है अर यौवनविखैं

शरीरकी दृढ़ता है, तौलौं तपश्चरणकरि स्वर्गमोक्षका साधनका उद्यम करणां, अर जे मोही जीव ऐसा विचार करै है जो आजि वा प्रभात स्वर्गमुक्तिका साधन आत्महित करूंगा ऐसे विचार करतै तो बहुतदिन बीत जाय, केवल विचारही तै कार्य सिद्ध नांही होय, बिना कार्य कियैही कालरूप वैरीकरि कण्ठविखैं बन्नकूं प्राप्त भए, ते मोही जीव पापकर्मके वसतैं क्षणमात्रकरि दुर्गतिरूप समुद्रविखैं पड़ै हैं, इत्यादिक चिंतवनतैं तिस सुकुमालके हृदयविखैं कामभोगादिकतैं अर घरदारादि वस्तुतैं दुगुणां वैराग्य भया, अहो इस उत्तुंग महलतैं कोई भी उपाय निकसनेकूं दीखै नाहीं, कैसा है महल? दृढ़ है द्वारनिविखैं कपाट जाके, ऐसैं चिंतवन करता वैराग्यविखैं तत्पर भला तपश्चरणके अर्थि उद्यमी ऐसा बुद्धिवान् सुकुमाल महलतैं निकसनेंका उपाय देखता संता एक वस्त्रनिका वींटा देख्या, तातैं वस्त्रनिकूं खैंचि परस्पर एकएक वस्त्रकूं रज्जुसमान दृढ़ बांधि, बहुरि महलका थंभका दृढ़ बंधनकरि, फिर तिस वस्त्र लांबाय भूमिपर्यंत लम्बा क्षेपणकरि तांहि पकड़ पुण्यका उदयतैं पृथ्वीविखैं उतरि यशोभद्र मुनिराजके समीप गया, तीन प्रदक्षिणां देय हाथ जोर नमस्कार करि आनन्दसहित सुकुमाल मुनिराजकूं ऐसैं कहता भया, हे भगवान् इस लोकविखैं विषयासक्तिपनेंकरि जे दिन गए ते संयमके आचरणविना वृथाही गए, अब आपकी कृपाकरि आपके वचनरूप अमृतके पानतैं मोहरूप दुर्विषका वमन करी आजि मैं अत्यन्त सचेत भया हूं, यातैं अबतो दयाकरि मोक्षकी प्राप्तिके अर्थि मोहि भगवतो दीक्षा देहु, कैसी है दीक्षा? समस्त सुखनिकी खानि

है अर मुक्तीकी उपजावनहारी है, तब यशोभद्र मुनिराज बोले, हे भद्र, तोनैं बहुत भला विचार किया, जातैं तेरी आयु तीन दिन-प्रमाण अवशेष रही है, तब सुबुद्धी सुकुमाल बाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रहका अर चार प्रकार आहारका मनवचनकायकी शुद्धतातैं त्यागकरि, यशोभद्र गुरुके वचनतैं शीघ्रही जिनमुद्रा ग्रहण करी, प्राथोगगमन संन्यास सहित ध्यानकी सिद्धके अर्थि धर्मध्यानका अवलम्बन करि, वनकै मध्य गमन करता भया, तहां भयानक निर्जन प्रदेशविखैं जाय देहतैं ममत्वका त्याग करि पृथ्वीविखैं एक पार्श्वतैं शरीरकूं निश्चल स्थापन करि धर्मध्यानतैं समाधिमरणके अर्थि महाप्रवीण सुकुमाल मुनिराज प्रायोगगमननामा संन्यासकूं अंगीकार करता भया।

भावार्थः—संन्यासकै अर्थि तीन भेद है, भक्तिप्रत्याख्यान, इंगिरी, प्रायोगगमन, तहां चतुर्विधि आहारका त्याग तौ तीनूही-विखैं प्रसिद्ध है, अर भक्तिप्रत्याख्यान संन्यासविखैं स्वपरकृत देहका उपचार है, इंगिनीविखैं स्वकृतही उपचार है, परकृत नाहीं है, बहुरि प्रयोगगमनविखैं स्वपरकृत दोऊही उपचार नाहीं है, सो सुकुमालमुनिनैं प्रायोगगमन संन्यास अंगीकार किया अर यशोभद्र मुनिराजभी तिस मंदिरतैं निकरिकरि संक्लेशकी हाणिकैं अर्थि कोऊ और जिनमंदिरविखैं जाय तिष्ठे, कैसे है यशोभद्र मुनि? अत्यन्त विशुद्ध है बुद्धि जाकी, अब यह सो कथन इहांही रह्या, यातैं परै और कथन सुनहू, वे सुकुमालकी बत्तीस स्त्रिया सुकुमालकूं नाहीं देखिकरि शोक करि आकुल भई

संती शीघ्रही यशोभद्राके निकट आय वत्तीस सुंदरी गद्गदवाणी करि ऐसैं कहती भई, हे मात, हम वत्तीस वनितानिको प्राणवल्लभ तेरा पुत्र आजि नांही दीखै है, सो नाहिं जाणिये हैं वह धर्मात्मा कहां गया ? या भांति तिन सुकुमालकी वनितानके वचन सुनकरि वड़े शोकका भारकरि शीघ्रही यशोभद्रा मूर्छाकूं प्राप्त भई, सो मानूं निश्चल जिनवानीही है, अर ताही समय सकल सुजन परजन हाहाकार शब्द करते भए, वहुरी शोककरि पीड़ित सुकुमालकी समस्त वनिता वड़ा रुदन करती भई, तावर पीछैं अपनें अपनें वंधु जननिकरि शीतोपचारादिकनितैं सनैं सनैं कहिए मंद मंद धीरैं चेतनाकूं पायकरि यशोभद्रा सुकुमालके हेरवेकूं उद्यमी भई, परिवारसहित शोककरि पीडित वह यशोभद्रा इत उत अपना पुत्रकूं देखती संती जिस वस्त्रमाला करि सुकुमाल महलतैं उतरयाथा तिस वस्त्रमालाकूं देखती भई, तव सुकुमालकी माता यशोभद्रा तिस वस्त्रमालाकरि चित्तविखैं अपना पुत्रका गमन जानि शीघ्रही श्रीजिनेन्द्रके मंदिर गई, तहां तिस यशोभद्र मुनिराजकूं भी नाहीं देखिकरि ताहीसमय प्रगट यह निश्चय किया जो इस वस्त्रमालाका उपायकरि अर इहां चतुर्मासका योग धारणके उपायकरि निश्चयकी मेरापुत्रकूं यशोभद्र मुनिही ले गया. तापीछैं परम शोककरि व्याकुल ऐसी वा यशोभद्रा समस्त वंधुजननिकरि सहित वड़े आग्रहतैं भूतलविखैं अतिशयपनेकरि सुकुमालकूं हेरने लगी. अर वृषभांक नृप आदि समस्त राजलोक वहुरि समस्त पुरवासी लोग सुकुमालके हेरवेकूं प्रवर्ततेभये अपने घरतैं वनादिकविखैं गए. ए राजादिक वा

यशोभद्रादिक वड़े जतनतैं वनविखैं निरंतर सुकुमालकूं हेरते थके हू जिस गूढ़ प्रदेशविखैं सुकुमाल मुनि प्रायोगमन सन्यास धारि तिष्ठैथा, तिस उज्जयनीपुरीविखैं सुकुमालका शोकादि करि समस्त पुरवाशी लोकनिनैं भोजन नांही किया, अर पसूननैं घास नाहीं भख्या; वहुरि पक्षीननैं चुगा नाहीं आचरथा, ता समय सुकुमालकी माताकै अर वंधु जननिकै वहुरि सुकुमालकी वत्तीसूं वनितानिकै जो दुःसह आतापकारी तीव्र शोक भया ताहि वर्णन करिवेकूं कौन समर्थ है ?

भावार्थ—कोऊभी समर्थ नाहीं यहतो कथन इहांही रह्या, अथ आगैं वो सुकुमाल मुनि भी निश्चल निर्मल परिणामनिसहित महा प्रवीण निज अर परकृत उपचारकी वांछा रहित अशुभ कर्मके क्षयकूं उद्यमी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक्तप इन चार आराधनाविखैं तल्लीन शुद्ध भावविखैं लगायाहै चित्त जानै, स्नेहरहित निद्रारहित धर्मवुद्धी धर्मध्यानका जवलों चिंतवन करै था तौलौं वह पूर्वभवकी भोजाई अग्निभूत विरामणकी स्त्री सोमदत्ता जाके मुखपैं सुकुमालके जीवनै वायुभूतके भवमैं लातकी दई थी, तानैं असमर्थपनें करि याका पाद भखनेंका निदान किया था, सो सोमदत्ता संसाररूप वनविखैं त्रसस्थावरकी अनेक योनिमें चिर-काल भ्रमण करि भयरूप है आत्मा जाका, पराधीन सर्वत्रतुके दुःखकरि पीड़ित पापकर्मके उदय करि तिसही वनविखैं स्यालनी भई, सो वनविखैं आगमनके अवसर सुकुमालके कोमल पावनितैं भूतलविखैं रुधिरकी धारा पडती गई था तांहि आस्वादन करती

चाटती थकी आयकरि निश्चल ध्यानारूढ़ सुकुमाल मुनिकूं देखत भई, तब पूर्ण वैरसम्बन्धी कोप करि निदान वैरके देखतैं महां क्रोधायमान होयकरि वास्यालनी स्वयमेव सुकुमालका दाहिनां पराकूं खाने लगी, अर वास्यालनीकी पिल्ली क्षुधातुर तिस स्यालनीकी साथिही सुकुमाल मुनिका वामा पांवके खानेंकूं मुख करिताही समय प्रारम्भ किया, सक्तिसहित तिन दोऊनकरि अति स्तोक स्तोक भक्षण करनेंतैं तिस सुकुमाल मुनिके अत्यन्त कोमल अंगविखैं वड़ी वेदना भई, तासमय तिस वेदनांके जीतवेके अर्थि अर परम वैराग्यकी वृद्धिके अर्थिं, वो धीरवीर सुकुमालमुनि अपने हृदयविखैं इन बाराभावनांके चिंतवनका प्रारम्भ किया, तिनके नाम सुनहु, प्रथम अनित्य भावना, दूजी आसरणभावना तीजी संसारभावना, चौथी एकत्वभावना, पंचमी अन्यत्वभावना; छठी असुचिभावना; सातवी आश्रवभावना; आठवी संवरभावना; नवमी निर्जराभावना; तापीछैं दशमीलोकभावना; ग्यारमी वोधदुर्लभभावना; अर वारवी धर्मभावना, ए वारह भावना संवेगकी उपजावनहारी उपसर्गका विजयके अर्थि चिंतवन करवो जोग्य है, तहां प्रथम अनित्य भावना भावता भया, यह देहकालरूप वैरीतैं क्षणमात्रमैं विध्वंस हो जायगा, अर यह यौवन विजुरीसमान क्षणभंगुर है, बहुरि समस्त भोग संपदा पटलसमान क्षणस्थायी है, जैसैं इस संसारविखैं भ्रमण करतैं पूर्वै मेरे अनन्तानन्त शरीर विलाय गए, तैसैं इहां यह भी शरीर कर्मरूप वैरीनकी हानिके अर्थि जाहू, इस देहके जानेमें मेरा कछु भी विगार नाहीं, मेरुसमान प्रचुर पापकर्मके वसि भया मैं नरक-

विखैं उपज्या, तहां नारकीननैं अनन्तानन्त तिल तिल प्रमाण मेरे देहके खण्ड खण्ड किए, अर तिर्यंचगतनिविखैं भ्रमतैं मेरे अनंत शरीरनिकूं निर्दई सिंहव्याघ्रादि क्रूर जीवनिनैंअनन्तवार भक्षण किए अब यह मेरा शरीर इहां कर्मनिके नासके अर्थि जाय है, तौ इस उपसर्गके विजय होतैं सन्तै मेरे परम लाभ है, जातैं संसाररूप वैरीतैं भयभीत ऐसे ज्ञानी जीवनिनैं दुष्कर तप करिए है, तहां भी ज्ञानी जीव उपसर्गका विजयकूं परम तप कहै है, अर तीन लोकविखैं जीवनिके शुभ कर्मतैं निपजे जे राज्यभोग शरीरा दारादिक बहुरि सम्पदासुख धनादिक वस्तु कछू येक सुन्दर दीखैं हैं, ते सर्व वस्तु गिणतीके दिननमैं कालरूप अग्निकरि खाककी रासि हो जायगी, या भांति समस्त जगतकूं विनाशीक जानिकरि भो ज्ञानी पुरुष हो, सुखकी प्राप्तिके अर्थि उग्रोग्र तपके समुदायनिकरि अविनाशी परम पदका साधन करो, इति अनित्यता १ जैसे मृगारी करि पकन्या वनविखैं मृगकूं कोऊ सरन नाहीं तैसें ही मनुष्यनिके जन्ममरणके दुःखनितैं रक्षक कोऊभी नाहीं है, जब इस जीवकूं यमराज आयकरि पकरै है तब इंद्रादिक देव अर समस्त विद्याधर चक्रवर्त्यादिक मनुष्य क्षणमात्र भी राखवेकूं समर्थ नाहीं है, संसाररूप वनविखैं भ्रमण करते अशरणपणें कर मैंनें छेदनभेदनादिक अत्यन्त तीव्र कोटिस दुःख भोगे है अब इहां यह पशु स्यालनी मेरे पावानकूं भक्षण करै है सो अशुभ कर्मको हानिके अर्थि अर मोक्षकी प्राप्तिके अर्थि, बहुरि संसारका विनाशके अर्थि, यह बहुत भला काज भया है, और तरह नाही जहां कोऊ भी रक्षक

नाहीं ऐसा इस तीन लोकविखैं हुं संसारी जीवनिकै रक्षक पंचपरम गुरु ही है, अर केवल प्रणीत धर्म रक्षक है, जातैं इस लोकविखैं यह पंच परमेष्ठी मुक्तिके दायक सत्पुरुषनिकै उपकार करवेकूं समर्थ है, इनसिवाय और नीच देव ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिक तथा देवी, दिहाड़ी क्षेत्रपाल भैरवादिक मंत्रतंत्रादि कोऊभी उपकार करवेकूं समर्थ नाहीं, यातैं इस दुर्द्धर उपसर्गविखैं अशुभकर्मका विजयके सिद्धकी अर्थि अर मुक्तिके अर्थि मेरे अरहंतादि पंच परमेष्ठी तथा जिनधर्मही शरणाधार होहु, और कुदेवादिक शरणादिक प्रतिपालक नाहीं होहू, या भांति तीन लोककूं शरणहित जानि करि भो चतुर विचारज्ञ पुरुषहो. तपसंयम करि शाश्वता निर्वाणकै शरणै जाहू, इति अशरणता २ यह आदिअंतरहित पाप रूप दुःखनिका समुद्र महाभयानक पंडितनिकरि निंद्यवेयोग्य ऐसा पंच प्रकार संसार सत्पुरुषनिकै स्थिरताके अर्थि कैसैं होय ? इस अनादि संसारविखैं भ्रमण करतैं नरक तिर्यंच दुर्गतिविखैं समस्त जीवनिकरि चिरकाल-पर्यंत मैंने अनन्ती वेदना पाई, इस स्यालनीके भक्षणादिकतैं उत्पन्न भया, ऐसा यह दुःख मेरे कितनाक है ?

भावार्थ— कछूभी नाहीं, यह दुःख तौ अशुभ कर्मके नाशतैं मेरे निस्सन्देह मुक्तिका सुखकै अर्थि है, या भांति वारम्वार संसारका विचित्रपनाका चिंतवन करता ऐसा वह सुकुमालमुनि मेरुगिरसमान अत्यन्त दिढ़अलांग कहिए निष्कंप भया, भो सुखके अर्थि ज्ञानी पुरुष हो, अनन्त दुःखनिकरि परिपूर्ण संसारका स्वरूपकूं जानि, देहतैं नेहका त्यागकरि, दर्शन, ज्ञान, चारित्रादिकके आचरणमैं

अनन्त सुखनिकी खानि ऐसा मोक्षका साधन करो, इति संसार ३। जन्म, जरा, मरणादिकके दुःखनिकरि रहित अर एकाकी निर्मल अमूर्त्तिक चिरंजीव ऐसा मैं आत्माराम निश्चय करि अनन्त गुणनिका भाजन हूं। ए दोउ स्यालनीकी पीछी इस दुर्गन्ध कलेवरकूं भलैंही खावो। मेरा अमूर्तिक निजस्वरूपकूं नांहीं खाय हैं। या भांति विचारि वह सुकुमालमुनि रंचमात्रभी कलुष परिणाम नाहीं करै है। भो ज्ञानी पंडित जन हो, जन्म जरा मरण रोग शोक दुःखादिकनिविखैं अपनां एकाकीपना देखिकरि मुक्तिके अर्थि एक चिदानन्द आत्माहीका चिंतवन करो। इति एकत्व भावना ४। यह घणावणां क्षणभंगुर शरीर मोतैं जुदा है अर निश्चयतैं मनवचन तथा सकल इन्द्रियांभी मोतैं जुदी है। जातैं यह दोऊ पशू कायकूं भखै है अर कायरहित मेरा आत्माकूं नाहीं भखै है। तातैं मेरै दुःख कहातैं होय? ऐसं वह मुनि हृदयविखैं चिंतवन करै है, या भांति शरीरादिकतैं अपना अन्यपणा जाणि करि भो अन्यत्व वेदी भव्य जीव, इस अशुचि अंगतैं जुदा कर मुक्ति अर्थि एक अपना निजस्वरूपका ध्यान करो। इति अन्यत्वभावना ५। क्षुधा तृषारूप अग्निका घर अर कामक्रोधरोगरूप नागनिकरि व्याकुल सप्तधातु उपधातु मलादिकनिकरि परिपूर्ण ऐसा यह काय ज्ञानी पुरुषनिकरि कहा सराहिये हैं?

भावार्थ—जैसे जिस घरमें मूत्रादिक भरे अर जामें सांप, गोहरे, न्यौल कीडा करैं; वहुरि जाके चहूं ओर अग्नि प्रज्वलित भई; तिस घरकों पंडित जन सराहनां नाहीं करैं, तैसें इस अशुचि

कलेवरकी ज्ञानी जन सराहना नाहीं करै है, अहो यह स्यालनी वंदीग्रहसमान मेरा अशुभ अंगकूं भखै है, अर इस अंगतै मोहि मुक्ता कहिए रहित करै है, सो यहही मेरे शिवदायक परम लाभ है, इत्यादिक भेद विज्ञानके चिंतवन करि, अति धीरवीर वह सुकुमाल मुनि स्यालनीकरि पावनिकूं खातसंतैंभी मनवचनकायकी शुद्धता-करि रंचमात्रभी क्लेशकूं नाहीं प्राप्त होय है, भो भव्य जीव हो, सर्व प्रकार इस कायकूं अशुचिमय जानिकरि संयमविखैं वा महा-घोर उग्रोग्र तपविखैं लगाय परम पवित्र मोक्षका साधन करो, इति अशुचिभावना, ६ यह संसारी जीव पांच मिथ्यात्व, वारह अव्रत, पचीशकपाय, पंद्रह योग इन सत्तावन प्रत्ययनकरि संचय रूप भए ऐसे जे अशुभ कर्मके आश्रव तिन करि छिद्र सहित नावकी नांइ संसारसमुद्रविखैं डूवे है, जिस भव्य जीवनैं तप, ध्यान अर क्षमादिकनिकरि कर्माश्रवका निरोध किया, तिस भव्यजीवकै मनो-वांछित संजम, संवर, निर्जरा अर मोक्ष सिद्ध भया, अर उपसर्गके दुःखकरि जो मेरा मन आजि मलीन होय तो मलीन मनकरि पाप हीका आश्रव होय, अर फिर तिस पापाश्रवतैं अनंत संसार होय, बहुरि तिस संसारविखैं वड़े वड़े पंडितनिकरिभी नाहीं कहे जाय ऐसा अत्यन्त तीव्र घोर दुःख है, ऐसैं जानिकरि वह सुकुमाल मुनि मोक्षका अर्थी उत्कट कष्टकूं सहै है, या भांति आश्रवके महान दोप जानि भोग्यानी पंडित जनहो, मन वचन कायतैं कर्मरूप वैरीनका विरोध करि आश्रवका अवरोध करो, इति आश्रव भावना ७ अर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप करि वहुरि मन वचन कायके योग

निरोध करि, अर धर्म शुक्ल ध्यान करि, जो महंत पुरुषनिके कर्मा-श्रवका निरोध होय सो संवर है, कैसे है संवर ? अनंतगुण रत्ननिका समुद्र है, अर संवर करि सहित किये हूये अल्प भी तप व्रतादिक भव्य जीवनिकै सर्वकाल विषैं महान फलकूं फलै है, अर संवरविना घोर तप व्रतादिक कछू भी फलदाई नाहीं, उलटे अशुभ कर्मके बंधके कारण होय है, बहुरि ऐसा दुस्सह घोर उपसर्ग होतसंतैं धीरवीर पुरुषनिनैं एकाग्र चित्त करि शुभ ध्याननितैं जो संवर करण है सो संवर सकल अर्थकी सिद्धिका दायक संसारके कारण ऐसै घोर पापरूप वैरीनका घात करे है, ऐसे विचार करि संवरका अर्थि ऐसा यह सुकुमालमुनि आत्मध्यानतैं रंचमात्र भी नाहीं चलायमान होहै, या भांति सँवरतैं प्रगट भये ऐसे सारभूत गुणनिकूं जानिकरि भो भव्य हो, उत्तम अनुपम गुणनिकी प्राप्तिके अर्थि मन वचन कायके निग्रहतैं सदाकाल संवर करो, इति संवर भावना, ८ अर सविपाक अविपाक भेद करि सर्वज्ञ देवनै निर्जरा दोय प्रकार कही है, तहां सविपाक निर्जरा तो सर्व संसारी जीवनिके होय है, अर अविपाक निर्जरा ध्यानी मुनिराजके ही होय है, वीतरागी आत्मध्यानी मुनिराजननैं उग्रोग्र तपश्चरणनिकरि संवरसहित जो निर्जरा इहां करिये हैं सो अविपाक निर्जरा है, कैसी है अविपाक निर्जरा ? दया कहिये आत्माकी रक्षा, अर मुक्ति कहिये समस्त कर्मनिका अभाव आदि गुणरत्ननिकी खानि है, अर कर्मनिके स्वयमेव उदयकरि प्रगट भई, बहुरि कर्मबंधनकी करनहारी ऐसी सविपाक निर्जरा सत्पुरुषनिके सदाकाल होय है, अथवा संवरकरि-

सहित मुक्तिके अर्थि सविपाक निर्जराभी करिये है।

भावार्थ—संवरसहित दोऊ ही निर्जरा मुक्तिकी कारण है, अहो, या सविपाक निर्जरा अपने कर्मके उदयतैं स्वयमेव मेरे भाग्यतैं उदय भई, कैसी है सविपाक निर्जरा ? पूर्वे संचय किया जे अशुभ कर्मरूप वैरो तिनको नाश करनहारी है, वो निर्जराका अर्थि सुकुमाल मुनि या भांति विचार समस्त मनवांछितका दायक ऐसा परिसहकरि मेरु समान निश्चल भया, भो भव्य जीवहो, सारभूत मुक्ति आदि समस्त गुणनिकी उपजावन हारो ऐसो निर्जराकूं जानिकरि मोक्षसुखके अर्थि सुकुमाल मुनि या भांति विचार, मनवांछितका दायक ऐसा परिसहकरि उग्रोग्र तपश्चरण करि निरन्तर अविपाक निर्जराका उपाय करो, इति निर्जरा भावना ९।

अधोलोक, मध्यलोक, उर्द्ध लोक भेदकरि तीन प्रकार यह लोक जिनेंद्रदेवनैं अकृतिम अर सास्वता कह्या है, कैसा है लोक ? दुःख अर सुख वहुरि उभय कहिये सुख दुखनिनकरि आश्रित है, तहां अधोलोकविखैं सात नरकधरानिमैं तो सर्वथा महान घोर दुःख ही है, सुखका लेसहू नाहीं, अर मध्यलोकविखैं काहू जायगा सुख है, काहू जायगा दुःख है, काहू जायगा सुखदुःख दोऊ मिश्रित है, वहुरि इस लोकका उर्द्ध भागविखैं स्वर्गादिकनमैं सुख है, अर तीन लोकका शिखरपैं नित्य अविनासी अनंतगुण अर अनन्त सुखनिका सागर ऐसा शिवालय है, वहुरि परमार्थ- जो शुद्ध निश्चयनय ताकरि ग्यानी जीवनिके चित्तविखैं मोक्ष विना यह समस्त लोक

दुःखनिका भाजनहीं भासे है, अर इस लोकविखैं अधोगतीमैं तथा पशूनकी वासठलाख जोनिविखैं कर्मनके वसि मैंने छेदन भेदनादि सबंधि महान घोर दुःख भुगते, सो यह दुःख कितनाक है? कछू भी नाहीं, इस दुःखकूं कौनसा घोरघोर दुःख मानै? कोऊ भी ग्यानि दुःख नाहीं मानैं, ऐसे विचार करि वह सुकुमाल मुनि आकुलतारहित ध्यानविखैं एकाग्रचित्त भया, या भांति परमागमकूं इस लोककूं दुःखमय जानिकरि भो भव्यजीवहो यमनियमादिकनिकरि लोकका शिखरपैं शिवालयका साधन करो, इति लोक भावना १०।

चार गति चौरासीलाख जोनरूप संसारविखैं भ्रमण करते ऐसे मिथ्यादृष्टी पापी जोवनिके निश्चयकरि यह मनुष्य जीवन का लाभ निधिसमान अति दुर्लभ है, अर तिस मनुष्य जन्मका लाभतैं भी आर्यखण्डका लाभ दुर्लभ है, वहुरि आर्य खण्डका लाभतैंभी क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्यसंबंधी उत्तम कुलविखैं जन्मका लाभ महान दुर्लभ है, अर ऊंचकुलविखैं जन्मपावनैंतैं भी दीर्घ आयुका पावना वहुत दुर्लभ है, अर दीर्घ आयुका लाभतैं भी निर्मल सम्यग्यानमई बुद्धीका पावना अत्यन्त दुर्लभ है, अर निर्मल बुद्धिका लाभतैं भी पांचूं इन्द्रियनकी परिपूर्ण सामग्रीका पावना महान कठिन है, वहुरि इन समस्त सामग्रीनका लाभ होतसंतेभी सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप अर वीतरागी निर्ग्रन्थ गुरुनका सेवन आदि सामग्रीनका लाभ निधिसमान उत्तरोत्तर अति दुर्लभ है, इत्यादिक उत्तरोत्तर दुर्लभपनातैं अत्यन्त दुष्प्राप्य ऐसी जो सम्यग्दर्शनादिककी एकत्रतारूप बोधि ताहि पाय

करि जे भव्यजीव वड़े जतनतैं मोक्षका साधन करे है तिनही भव्य जीवनिकैं इहां वोधिका लाभ सफल होहै, अर मनुष्यजन्मका लाभ होतसंतेभी जे मूर्ख मिथ्यादृष्टी पापी जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादिकविखौं प्रमाद करे है, ते पापी जीव संसाररूप गहन अटवीविखौं अनंतानंतकालपर्यन्त परिभ्रमण करे है, कैसी है वोधि? परलोकविखौं मनोवांछित अर्थकी साधनहारी है, अव इस घोर उपद्रवतैं जौमैं सम्यग्दर्शनादि गुणनितैं चिगजाऊं तो आगामी कालमैं मेरा दीर्घ संसारविखौं परिभ्रमण होय, ऐसे विचार वा सुकुमालमुनि मेरु समान अचल होतभया, भा भव्यजीवहो, मनुष्य पर्याय सम्यग्दर्शन आदि मोक्षमार्गकी सामग्री पायकरि तपयोगादिकनितैं निर्वाणका साधन करो, इति वोधिदुर्लभ भावना ११।

जो अपार संसारके दुःख समुद्रतैं उद्धारकरि संसारी जीवनिकूं शिवालयविखौं अथवा सौधर्मादि सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त शुभस्थानक विखौं धारण करैं सो सर्वज्ञभाषित महान धर्म है, ताके भेद दस है उत्तम क्षमा १ उत्तम मार्दव २ उत्तम आर्जव ३ उत्तम सत्य ४ उत्तम शौच ५, उत्तम संयम ६ उत्तम तप ७ उत्तम त्याग ८ उत्तम आकिंचन्य ९ उत्तम ब्रह्मचर्य १० ए दश लक्षण धर्म भव्य जीवनिके परम धरमके कारण है, इस उत्तम क्षमादि दश लक्षण धर्मके सेवनकरि मुनिराजके महाव्रतादिकको पालनरूप परम धर्म मोक्षका दायक होहै, वहुरि इस दश लक्षण धर्मका सेवन विना और दुर्द्धर कायक्लेशादिककरि मोक्षका लाभ कदेभी नहीं होय है, वहुरि तीन लोक विखौं सुखसंपदा, निवास आदि जो कछु सुन्दर सुहावणो वस्तु

दीखे है सो समस्त धर्मरूप कल्पवृक्षका फल है, अर इस परिसहनैं प्राप्त होतसंते जो मेरा मन विकारपनाकु प्राप्त होय तो मेरे उत्तम क्षमाधर्म कहां रह्या ? ऐसे विचारि सो सुकुमाल मुनि तिस स्यालनीकृत उपसर्गकूं समभावतैं सहे है, या भांति समस्त धर्मका फल जानिकरि भो धर्मात्मा भव्यजीवहो, उत्तम क्षमादि दश लक्षणनिकरि वडे जतनतैं एक केवल सर्वज्ञभाषित धर्महोका सेवन करो इति धर्मभावना १२।

अर जे भव्यजीव इन वारह अनुप्रेक्षानिका निरन्तर चिंतवन करे है तिन भव्यजीवनिके रागादिक वैरी क्षीण होय है अर धर्मविखैं वहुरि धर्मका फलविखै अत्यन्त प्रीति चढ़े है, या भांति जानि करि भो बुधजन हो, अशुभ कर्मके नाशके अर्थि इन वारह शुभ भावनाका चित्तविखैं निरन्तर चिंतवन करो। कैशी हैं यह वारह भावना ? अनंत गुणनिकी उपजावनहारी है, ऐसे इन वारह अनुप्रेक्षानिका चिंतवन करि तासमय इस सुकुमालके हृदयविखैं तुरत ही परम वैराग्य प्रगट भया। तव तिस वैराग्यभावकरि निज आत्माकूं अपना देहतैं भिन्न करि वो धीरवीर सुकुमाल मुनिराज, शुद्ध आत्माका निर्विकल्प एकाग्र चित्तकरि अंतरंगविखै निरन्तर चिंतवन करता भया। अर स्यालनीकृत अत्यन्त तीव्र वेदनाकूं जनता सन्ता भी यह सुकुमालमुनि तिस आत्मध्यानके प्रभावकरि चित्तविखै कदाचितहू रंचमात्र खेदकूं नाहीं प्राप्त होय है, तावरपीछैं वह धीरवुद्धी सुकुमाल मुनि स्यालनीकृत प्रचंड वेदनाकूं जीतकरि तिन उपसर्गनिकरी वज्रसमान. अभेद्य भया, कैसा है सुकुमाल मुनि ?

मेरुसमान अचल है आकृत जाकी, अथवा महापापनी दुर्वल स्यालनी पिल्लीकरिसहित प्रथम दिनविखैं तो क्रमतैं तिस सुकुमालके गोडेतक पग खाये, अर दूजे दिन जांघतक भक्षण करी, तीजे दिन अर्द्धरात्रिके समयविखै बलात्कार सुकुमालका उदरकूं विदारणकरि वा पापिनी स्यालनी अपने मुखकरि तिस उदरकैं मध्यतैं आंतनके समूहकूं खींचिकरि सनैं सनैं खानेका प्रारम्भ किया। तासमय उदर के विदारणतैं लगाय प्राणनिका अन्तपर्यन्त भले प्रकार चार आराधनाका आराधन करि वो सुकुमाल मुनि धर्मध्यान विखैं तल्लीन बहुत सावधानपनातैं प्रयोगगमन सन्यासमरणकरि प्राणनिका त्याग किया। तावर पीछे आत्मध्यानके प्रभावतैं बहुत पाप कर्मनिका घात करि प्रचुर पुण्यके उदयतैं वह अवन्ती सुकुमाल महामुनिराज सर्वार्थसिद्धीकूं प्राप्त भए, कैसी है सर्वार्थ सिद्धि? समस्त मनोवांछित कार्यनके सिद्धीकी दाता है, अर महारमणीक परमपवित्र है, अर शिवालयके अधोभागविखैं वारह योजन नीचे तिष्ठे है, वहुरि मुक्तिरूपी कामिनीकी सारभूत निकटवासिनी सखी है।

भावार्थः—एक भवमेहीं मुक्ति कामिनीतैं मिलावनहारी परमप्रवीण सखी है।

या भांति यह सुकुमाल पूर्वपुण्यके प्रभावतैं परम अनुपम भोग संपदाकूं भोग करि, अर रागका अभावतैं विधिपूर्वक परमपुनीत भगवती दीक्षा अंगीकार करि, वहुरि स्यालनीकृत महान घोर परिसहनकूं सहिकर परम उत्कृष्ट सुखनिकी खानि ऐसो सर्वार्थसिद्धीकूं प्राप्त भए, ऐसे जानिकरि भो भव्यजीवहो, शिवालयके अर्थि

धीरपना अंगीकार करो, ऐसा उपदेश है, अर जे वाह्य अभ्यन्तर समस्त परिग्रहकरिरहित मोक्षमार्गके सम्मुख सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि अनेक गुणनिके भाजन समस्त परिसहरूप वैरोके जीतनहारे परम धारवीर तीन लोकविखैं पूजनीक संसारसागरके पारकूं प्राप्त भये ऐसे जे सुकुमालादि समस्त महामुनि तिनकी तिनकेही गुणानुवादकरि मैं सकल कोर्तिनामा आचार्य स्तवन करूं हूं।

इत्याचार्य सकलकीर्तिविरचित सुकुमालचरित्र संस्कृत ग्रन्थ ताकी देशभाषामय वचनिकाविखैं सुकुमालमुनीके स्यालनीकृत उपसर्गको विजय, अर वारा भावनाके चिंतवनकरि सर्वार्थसिद्धिविखैं गमनका है वर्णन ज मैं ऐसा अष्टम सर्ग समाप्त भया।

चौपाई।

चारि घात घातक अरिहंत वसुविधिरहितसिद्ध सिवकंत
रत्नत्रयधारक सब साध मंगलकार नमूं तह वाध ॥१॥

अथानंतर जासमय सर्वार्थसिद्धिकूं पधारे ताही समय इस सुकुमालमुनीके घोर उपसर्गनिका विजयका महात्म्यतैं इन्द्रादिक देवनिके आसन कंपायमान भए। तव इंद्रादिक देव अवधिग्यानके वलकरि तिस सुकुमाल मुनिराजका परमउत्कृष्ट मरण जानिकरि आश्चर्यसहित हुए संते हर्षकरि भक्तिके अनुरागतैं ऐसे स्तुति करते भए, अहो, यह सुकुमाल महामुनि धीरपनाकरि शोभायमान, अनेक गुणरत्ननिका आकर, तीनलोकविखैं वंदनीक, पूजनीक, महान ग्यानी समस्त

भव्य जीवनिके अग्रेश्वर, महागुणवान ऐसा वह मुनि अत्यन्त कोमलकायका धारक हुता, सो ऐसा अत्यन्त दुर्द्धर घोर उपसर्गकूं समभावनितैं जीतता भया, या भांति तिस धीरवीर सुकुमाल मुनिको परमस्तुतिकरि अर समस्त देवदेवोनकरि सहित अपने अपने वाहनपैं चढ़े। अर नानाजातिके वादित्रनिके नाद करि, बहुरि जयजिनेन्द जयजिनेन्द इत्यादि घोकणानिकरि दिशानकूं पूर्ण करते ऐसे इंद्रादिक महर्द्धिक देव हर्षसहित पुण्यकी प्राप्तोके अर्थि वड़ी विभूतिकरि सुकुमाल मुनिके पूजनके निमित्त महीतलविखैं आये। तदा वनविखैं सुकुमाल मुनोके शरीरकी इन्द्रादिक देव वड़ी विभूतिकरि देवलोकसंबंधी पूजनके द्रव्यनकरि उत्सवसहित महान पूजा करी, तब तिन देवनिके जयजयकार आदि शब्दनिकूं अर वादित्रनिके परम रमणीक नादनिकूं सुणकरि सुकुमालको माता कुटुम्ब आदि समस्त परिजन तिस सुकुमाल मुनीके तप व्रतका ग्रहण, अर आयुके अंत समभावनितैं सर्वार्थसिद्धि विमानविखैं भली शुभगति जानिकरि भारतकूं छांड़ि आनंदसहित होय करि याभांति प्रशंसा करते भये। अहो, यह अत्यन्त धर्मात्मा सुकुमाल इहां देवनिके भी दुर्लभ ऐसी भोगसंपदाका शीघ्रही त्याग किया, अर भगवती दीक्षा अंगिकार करि ऐसा घोर तप किया जो काहूसैं वणि न आवै, वहुरि तीन दिन पर्यन्त स्यालनी कृत ऐसा घोर उपसर्गकूं जीतकरि समभावनिविखैं प्राण छोर सर्वार्थसिद्धकूं प्राप्त भया। ऐसे सुकुमालकी अत्यन्त प्रशंसा करि अर प्रभातहो समस्त सज्जन पुरजनकूं बुलाय बहुरि नृपादिकनिकरिसहित सुकुमालकी माता यशोभद्रा जहां

सुकुमालका कलेवर था तिस वनस्थलमें गई। तहां सुकुमालका अर्ध-भक्षत देहकूं देखकरि अन्तःकरणविखैं सोक करि आकूल थई थकी वा यसोभद्रा दुःखकरि विह्वल तहां मूर्छा करि भूमीमें परी, अर सुकुमालकी वत्तीस प्राणवल्लभा भरतारके देहके दर्शनमात्रतैं परम शोककूं पायकरि हाहाकार सहित रुदन करती भई, अर समस्त वांधव भी हाहाकारसहित रुदन करते भए। अर वृषभांक नृप आदि राजालोक वहुरि कितनेक पुरवासी लोक सुकुमालका धीरपनाके देखवेतैं सुकुमालकी परम प्रशंसा करते संते हृदयविखैं वड़ा अचरजकूं प्राप्त भए, तावर पीछे सुकुमालकी माता यशोभद्रा सनैंसनैं चेतनाकूं पायकरि अर भेदविग्यानके वलतैं शीघ्रही शोकका नाश करि वहुरि भली वाणी करि स्वजनपरिजनकूं संवोधिकरि तिस सुकुमाल मुनिकी परम प्रशंसा करती भई, अहो परिजन हो, पृथ्वीविखैं सुकुमालसारखे केई सत्पुरुष ऐसे है जो देवनिहूके दुर्लभ ऐसे परमभोग अनुपम सुखनितैं भोगते निमिषमात्रकरि महा घोर उपसर्गनिके जीतवेकूं समर्थ भए, ऐसे सुकुमालको प्रशंसा करि संतुष्ट भई ऐसी यशोभद्रा सेठाणी सुकुमालके शरीरका पूजन करि, वहुरि अगर चंदनतैं संस्कार करि, जिस जिनालयविखैं यसोभद्र मुनि राज तिष्ठे थे तिस मंदिरविखैं धर्मके सिद्धिके अर्थ समस्त बंधुजन आदि वृषभांक राजासहित मुनीके पास गई, तहां तिस आचर्यकूं देखि हृदयविखैं हसिके जिनविंवका पूजन करि अर यसोभद्र मुनिराजकूं प्रणाम करि हर्षसहित कोमल वाणी करि ऐसे पूछती भई, भो भगवन्! इहां सुकुमालके ऊपरि मेरा अत्तन्त स्नेह कैसे भया?

सो आप कृपा करि स्नेहका कारण कहो, याभांति यसोभद्राके प्रश्नतैं वायुभूतके भवतैं लगाय अच्युत स्वर्गविखैं गमन पर्यन्त समस्त जीवनिका पूर्वभवसंबंधी कथाको पूर्वोक्त प्रकार वर्णन करि वहुरि अवशेष पुण्यके उदयतैं तिनका इहां आगमन सम्वन्धी समीचीन कथाकूं वह यसोभद्र मुनिराज अवधि ग्यानकरि याभांति कहते भये ।

अथानंतर सुकुमाल पूरव भवविखैं जो नागश्रीका पिता नागसर्म विरामण ताका जीव देव भयाथा, सोतो अच्युत स्वर्गतैं चयकरि इन्द्रदत्त सेठ अर गुणवती सेठाणीका सुरेन्द्रदत्तनामा पुत्र, महा धर्मात्मा विषयभोगतैं अत्यंत विरक्त, महा धनवान, राजश्रेष्टी तेरा भर्त्तार भया, अर चम्पापुरीका चन्द्रवाहनराजाका जीव देव भयाथा सो आरणस्वर्गसैं चयकरि सर्वयसा नामा वैश्य अर यशोमतीनामा स्त्री तिनके, मैं यशोभद्रनामा पुत्र होता भया, सो मैं कुमारअवस्थाविखैंही संसार देहभोगनितैं उदासीन श्रीगुरुके पास भगवती दीक्षा धारण करी, समीचीन तपके वलतैं अवधि मनःपर्यय दोय ग्यानकूं प्राप्त भया। अर त्रिदेवी विरामणीका जीव देव भयाथा सो अच्युतस्वर्गतैं चयकरि सम्यग्दर्शनके अभावतैं सुकुमालविखैं अत्यन्त स्नेहवती ऐसी तू मेरो वहिण यसोभद्रा भई। अर नागश्रीका जीव पद्मनाभ देव भयाथा सो अच्युतस्वर्गतैं चयकरि इहां पुण्यसे प्रभावतैं जगतविखैं विख्यात ऐसा धर्मात्मा सुकुमाल भया, और राजग्रहनगरका राजा सुवलका जीव भया था सो अच्युतस्वर्गतैं चयकरि पुण्यके उदयतैं यहां यह वृषभांक राजा भया, अर कौसांबीका राजा अति-

वलका जीव देव भयाथा सो भी आरणस्वर्गतैं चयकरि इहां इस वृ-पभांक राजाके यह कनकध्वजनामा पुत्र भया। याभांति यशोभद्र-मुनिराजके मुखरूप चन्द्रमातैं उत्पन्न भया, जो सत्यार्थ वचनरूप अमृत ताहि नृपादिक निकरिसहित पानकरि, अर मोहरूप विपका वमनकरि, अर संसारसम्पदा गृहादिकविखैं परम संवेगकूं पाय-करि, बहुरि पुत्रसम्बन्धी अपने मोहकी निंदाकरि यह यशोभद्रा तप ग्रहण करवेकूं उद्यमी भई, तासमय सुकुमालकी चार प्राणप्रिया गर्भ-वन्ती हुती। तिनकूं सर्व घर सम्पदादिक सौंपकरि अवशेष अठा-ईस पुत्रवधू अर और बहुत बन्धुजनकरिसहित सेठाणी यशोभद्रा तुरतही बाह्य अभ्यंतर परिग्रहका त्यागकरि मुक्तीके अर्थि दीक्षा ग्र-हण करती भई। अर राजा वृपभांकभी तिस यशोभद्र मुनिराजके समीप अपने पूर्वभवकूं सुनकरि परम वैराग्यकी सामर्थ्यतैं अपने छोटे पुत्रके अर्थि राज्यसम्पदा देयकरि संसार देह भोगनितैं विरक्त ऐसे बहुत राजपुत्रनिकरिसहित अर कनकध्वजकरिसहित समस्त सम्पदाका त्याग करि मन वचन कायकी विशुद्धतातै मोक्षके अर्थि मुक्तीकी मातासमान ऐसी भगवती दीक्षा अंगिकार करी, तापीछैं ते समस्त मुनिराज परम तप करते अर श्रुतका अध्ययन करते अर आपापरका विचार करते, अर नानादेशनिमैं विहार करते, अर निर्जन वनविखैं निवास करते, बहुरि परमदीक्षाकूं पालतसन्ते, मोक्षमार्ग विखैं स्थित करते भए। तहां तिस समस्त योगींद्रनके मध्य सुकुमालका पिता सेठ सुरेन्द्रदत्त १ सुकुमालका मामा यसोभद्रमुनि १ उज्जयनीका राजा वृपभांक १ अर वृपभांकका पुत्र कनकध्वज

ये चार महामुनि चरमसरीरी तद्भव मोक्षगामी शुक्लध्यानरूप खड्ग तैं बलात्कार समस्त कर्मरूप वैरीनका घात करि अर इन्द्रादिक देवनितैं पूज्यताकूं पायकरि बहुरि छायकसम्यक्त, क्षायकज्ञान, क्षायकदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अर अव्याबाधत्व इन आठ गुण आदि अनन्त गुणनिकूं पायकरि अनुपम अनन्त सुखकरि परिपूर्ण ऐसा परमधामकूं प्राप्त भए। अर समस्त मुनिराज अपने अपने तपश्चरणके अनुसार सौधर्मस्वर्ग आदि सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त उत्तमपदकूं प्राप्त भए, अर सुकुमालकी माता यशोभद्रा अर्जिका तीव्र तपके प्रभावतैं अच्युत कल्पकूं प्राप्त भई, बहुरि कोईएक अर्जिका दर्शन, ग्यान, चारित्र अर तप इनके प्रभावतैं सौधर्मादि अच्युतस्वर्गपर्यन्त युगलनिविखैं बड़ी रिद्धके धारक महर्द्धिक देव भए। अर कोईएक अर्जिका तपके प्रभावतैं सौधर्मादि अच्युतस्वर्गपर्यंत कल्पनिविखैं अत्यन्त रूपवती मनोहर देवांगना भई, अथान्तर सो सुकुमाल मुनिराज पुन्यका उदयतैं सर्वार्थसिद्धि विमानविखैं उपपाद शिलाके मध्य रत्नमई कोमल शय्याविखैं अन्तरमुहूर्तकरि सम्पूर्ण नवयौवनकूं पाय दिव्य वसन भूषण अर पहुपमाला दीप्तकांत आदिकरि विभूषित कहिए सोभायमान ऐसा महमिंद्र देव तिस उपपाद शय्यातैं उठकरि मानू साक्षात पुण्यके पुंजहो है कहां ऐसे अहमिंद्र देवनिकूं नैननितैं अवलोकन करि अवधि ग्यानतैं प्रभावतैं पूर्वभवसम्बन्धी समस्त प्रचुर तपका फल जानिकरि, बहुरि साक्षात तपका फल देखिकरि धर्मविखैं दृढ़ बुद्धि धारण करता भया, तापीछें अत्यन्त पुण्यात्मा वह

अहमिंद्रदेव धर्मके सिद्धिके अर्थि उत्तंग दिव्यरत्न मणिमय सुवर्णमई जिनमन्दिरविखैं गया, तहां अद्भुत तेजके पुंज हे श्री जिनदेवके प्रतिविम्व तिनकूं प्रणाम करि अर परम पुनीत पूजाके द्रव्यकरि भक्तीथकी आठ प्रकार पूजन विधान करि अहमिंद्रनिकरिसहित सो पुण्यात्मा पुण्यका उपार्जन करता भया, तापीछैं वह अहमिंद्र-देव अपना निवासविखैं जायकरि पूर्वभवविखें उग्रउग्र तपकरि उपार्जन करी ऐसी समीचीन विमान आदि समस्त अपनी जम्पदाकूं अंगिकार करी, अर अपने निवासविखैं तिष्ठता यह अहमिंद्रदेव त्रिलोकवर्ती समस्त जिनविंव अर जिनमन्दिरनिकूं अपना अवधि-ग्यानतैं अवलोकनकरि प्रणाम करता भया। अर अपना स्थानमें तिष्ठता ही यह अहमिंद्र सदाकाल पंचकल्यानकनिविखैं श्री जिनेंद्र तीर्थंकर देवनिकूं सिर नवाय भक्तिसहित स्तुति नमस्कारादि करे है, अर गणधरादिमहन्त केवलीनके केवलग्यान निर्वाण कल्याणके कालमैं यह अहमिंद्र देव प्रणामादि करे है, अर तहां कोई अवसर-विखैं विना वुलाए स्वमेव अपना इच्छातैं आये ऐसे जे अहमिंद्र देव तिनकरिसहित सो अहमिंद्र धर्मकी करणहारी समीचीन धर्मगोष्टी करेहै। इत्यादिक नानाप्रकार पुण्यका उपार्जन करता ऐसा वह अहमिंद्र देव पूर्वपुण्यके उदयतैं प्रविचाररहित अनुपम सुखनिकूं निरन्तर भोगवे है। अर स्फाटिक मणीमई विमानविखैं स्वभावही करि परम सुन्दर अति मनोहर ऐसे महल वनपर्वतादिकनि विखैं प्रीततैं अहमिंद्रनिकरिसहित यथेच्छ क्रीड़ा करता अर सदाकाल धर्मध्यानका चिंतवन करता वो अहमिंद्र देव सुखसागरके मध्य

मग्न रहेहै, तिन अहमिंद्रदेवनिके स्वभवहीकरि परम रमणीक ऐसा अपना मनोहर शुभस्थानविखैं जो रति होय है। सो रति और स्थानविखैं काहूठौर कदाकालभी नाहीं हो है। तातैं अपनां परम उत्तम महोहर स्थानकूं छांड़िकरि अन्यथा स्थान विखैं अहमिंद्र देवनिका गमन कदेभी नाहीं हो है। अर वह समस्त अहमिंद्र देव कैसे है? समाम ऋद्धिकरि शोभायमान है। अर जिनके हीनाधिकपनां नाहीं, सबही समान पदकरि सहित है अर जिनके लेश्याकी विशुद्धता अवधिग्यानका प्रमाण पांचूं इंद्रियनके सुख अर भोगोपभोगसम्पदा समान है, सर्वहीं अहिमिंद्र देव मन्दरागो धर्मध्यान विखैं सावधान परम स्नेहकरि संयुक्त है अर जिनके परस्पर ईर्षा नाहीं, मान बढ़ाई नाहीं, अर विकारकरिहित, सरल परिणामके धारक, परमप्रवीण, परम सौम्यरूप, सादस धर्मके फलतैं सर्व ही अहमिंद्रदेव समान है, इहां मैं ही इंद्र हूं, मैं ही अहमिंद्र हूं। यहां मोसिवाय और कोऊ दूजा इन्द्र नाही है। ऐसे वह समस्त हो अहमिंद्र देव अपना उत्तम पदसम्बन्धी महान सुखकूं अपने अपने हृदयविखैं प्राप्त हो है, अर स्वर्गविखें अनेक अप्सरानकरिसहित केलि करतैं जो सुख होय है तातैं असंख्यातगुणा सुख अहमिंद्रदेविनिके पैंड पैडमें है। कैसा है अहमिंद्रदेवनिका सुख? बाधारहित है, अर उपमारहित है। अर स्वात्मज कहिये अपने आधीन है, पराधीनता करि रहित है। बहुरि प्रविचारता करि रहित है।

भावार्थः—प्रविचार नाम पांचूं इंद्रियनके विषयनका है सो भवनवाशो, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, यह भवतत्रक अर सौधर्म

ईशान सुर्गके देव इन चार जायगा तो मनुष्य मनुष्यणीके मैथुनके रतिकालविखैं कामसेवनकी नांई काय भोग है। अर सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके देवनिके देवांगनाके स्पर्शमात्रही भोगसुख है, अर ब्रह्मब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट इन चार स्वर्गके देवनितैं देवांगनाके रूपके अवलोकन मात्र ही भोगसुख है, अर शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार इन चार स्वर्गके देवनिके देवांगनाका वचन श्रवणमात्रही भोगसुख है। अर आनत प्राणत, आरण, अच्युत, इन चार स्वर्गनि-विखैं देवनिके केवल मनविखैं विचारमात्रही भोगसुख है। वहुरि नव ग्रैवेयक, नव अनुदिसि, पांच अनुत्तरविखैं देवांगना नाहीं। तातैं समस्त अहमिंद्रनिके मनकाभी विकल्प नाहीं। परम ब्रह्मचारी सदा प्रविचाररहित अप्रविचार है, कैसे हैं अहमिंद्र देव? काम-ज्वर करि रहित है। संसारविखैं परिपूर्ण पुण्यका उदयतैं समस्त दुःखरहित जो सर्वोत्कृष्ट सुख है सो सम्पूर्ण सुख सर्वार्थसिद्धि-निवासी अहमिंद्र देवनिके है। इत्यादिक सुखविखैं भले प्रकार तल्लीन वो अहमिंद्र देव कैसा है? तेतीस सागरकी है आयु जाकी, अर दिव्य मनोहर लक्षणनिकरि लक्षित है। अर तेतीस हजार वर्ष व्योत भये सर्व इंद्रियनके सुखदाई अमृतमई दिव्य मानसिक आहा-रकूं आस्वाद करै। अर तेतीस पक्षका साढ़ासोला मास व्यतीत भए रंचमात्र एक स्वास लेवे है। अर अपना अवधि ग्यान करि त्रिलोकवर्त्ती समस्त मूर्तिक द्रव्यनकूं जाने है। अर अपना अवधि ग्यान क्षेत्रपर्यन्त विक्रिया करनेविखैं समर्थ ऐसी जो विक्रियारिद्धी ताकरि शोभायमान है। अर उत्कृष्ट शुक्ल लेश्याकरि सहित है।

अर निरन्तर धर्मध्यानविखै तल्लीन है। अर सात धातु, सात उपधातु, मैल पसेव, रोगादिक करिरहित दिव्य स्फटिक मणीसमान उज्ज्वल है। विक्रिय देहकूं धारण करे है। अर एक हाथ प्रमाण ऊंचा है मनोहर काय जाका अर नेत्रनिको जो उन्मेप कहिए टिमकारा ताकरि रहित है।

भावार्थ—नेत्र टिमकारे नाहीं, अर आदि शब्दतैं शरीरको छाया नाहीं परे हैं। अर सुखका समुद्रके मध्य तिष्ठे हैं, अर समस्त अनिष्टके संयोग करिरहित है। अर इष्टका वियोग करिरहित है। बहुरि समस्त दुःखकरि रहित ऐसा वो अहमिंद्र देव तिस सर्वार्थ सिद्धि विमानविखैं सुख सहित स्थिति करता भया, सो यह सुकुमालका जीव अहमिन्द्र देव तिस सर्वार्थसिद्धि विमानतैं चयकरि इसी जंवूद्वीप भरतक्षेत्र आर्यखंडविखैं क्षत्रियादिक तीन उत्तम कुल में जन्म पायकरि बहुरि रत्नत्रय धर्मका प्रभावतैं समस्त कर्मका नाशकरि निश्चयथकी मोक्ष जायगा। या भांति शुद्ध निर्दोष चारित्रके प्रभाव तैं सो अहमिन्द्र देव अनुपम सारभूत अर दुःखका लेशमात्र करिभी रहित, बहुरि समस्त विकारकरिरहित ऐसा परम सुखकूं भोगवे है। ऐसे जानिकरि भो भव्य जीव हो, उत्तम सुखके प्राप्तीके अर्थ इहां चारित्रको शुद्धता करि केवल सर्वज्ञ भाषित धर्मका सेवन करो। धर्म जो है सो अनन्त गुणनिका दायक है। अर समस्त दोषनिका नासक है। अर ध्यानी मुनिराज धर्म होनैं आश्रय करे है, अर धर्मकरि ही मोक्षका सुख भले प्रकार साधिये है, अर धर्महीके अर्थि मेरा बारम्बार नमस्कार हो हूं। अर भगवानभाषित धर्मतैं

सिवाय और कोऊ भी उत्तम सुख प्रगटनहारा नाहीं है। अर धर्मके मूलत्रय सम्यग्दर्शन, ग्यान चारित्र है। तातैं मैं धर्महोविखैं निरन्तर लगाऊ हूं। सो हे धर्म तू मेरे परिपूर्ण होहू। यह धर्मतैंही अत्यंत उत्तम विभूतकूं पावे है। अर धर्मतैं ही शोभायमान रूप संपदा पावे है। अर धर्महीतैं संयमका लाभ होय है। अर धर्मतैंही महा घोर उपसर्ग का विजय होय है। बहुरि धर्मतैंही एक भवमें निर्वाण संपदाकी कर-हारी ऐसी अनुपम परम उत्कृष्ट सर्वार्थ सिद्धिको सम्पदा पावे है। या भांति जानिकरि भो भव्य जीव हो, इहां सदाकाल बड़े जत्नतैं मन वचन कायको शुद्धताकरि धर्महीका सेवन करो। इस संसार विखैं धर्मविना उत्तम संपदा कहांतैं होय। अर पांचूं इन्द्रियनके मनोग्य विषयनका लाभ धर्मविना काहेतैं होय? अर सारभूत समस्त भोग धर्म विना काहेतैं होय? अर समस्त लोकनिके मध्य मानपणा धर्मविना काहतैं होय? अर धर्मविना अति मनोग्य रम-णीनका लाभ काहेतैं होय? अर धर्मविना इहां अपने वांछित अर्थका लाभ कैसे होय? अर इहां धर्मविना अपने मनकी शुद्धता काहेतैं होय? अर धर्मविना उत्तम धर्म जो निजात्म शुद्धधर्म ताका लाभ काहेतैं होय? अर धर्मविना यहां यथाख्यात संयमका लाभ काहेतैं होय? अर धर्मविना इन्द्र अहमिंद्र, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, कामदेव, आदि उत्तम पदनिका लभा काहेतैं होय? अर धर्मविना इहां सत्पुरुषनिके बाह्य अभ्यन्तर वैरीनका विजय काहेतैं होय? या भांति जानकरि भो बुधजन हो आत्महितके अर्थी सर्वज्ञ भाषित अनुपम धर्मका बड़े जतनतैं निरन्तर सेवन करो। कैसा है

धर्म ? समस्त संसारके दुःखनिका घातक है। अर समस्त मनो वांछित अर्थका प्रगट करनहारा है। वहुरि परमार्थभूत आत्मीक सुखका अद्वितीत एक कारण है।

या भांति सारभूत चरित्रके रचनेका मिसकरि अत्यन्त धीर-वीर श्री सुकुमाल मुमिको मैं सकल कीर्तिनामा आचार्य यह स्तुति करी है, कैसे है सुकुमाल मुनि ? तींन भुवनकरि वंदनीक हैं। सो वह मुनिराज कर्मरूप वैरिनके विजयविखैं समस्त उपद्रवका घातक ऐसा अपना अद्भुत वीर्य मोकूं देहु। अर समस्त अशुभ कर्मको विनाशक ऐसो समाधिमरण, वहुरि अपने समस्त उतम क्षमादिक गुणनिके समुदाय, मोहि देहु येही मेरी उनतैं प्रार्थना है, अर अल्प-श्रुतका धारक ऐसा सकल कीर्तिनामा मुनिकरि किया जो यह सुकुमालचरित्र ताहि समस्त अग्यान सम्बन्धी दोपनिके घातक ऐसे वहुग्यानी मुनिराज सुद्ध करो। अर इस सुकुमालचरित्रको रच नाविखैं अब यहां प्रमादके वसकरि अक्षर, स्वर, संधि तथा मात्रा, वहुरि पदनके जोड़नविखैं जो मैं कछु चूक करि कह्या होय, तो सो समस्त मेरा अपराध हे माता भगवती परमेश्वरी जिनवाणी तुम क्षमा करहू. अर इस सुकुमाल चरित्रकूं जे मुनिराज इहां मोक्षके सिद्धीके अर्थि पढ़े है ते मुनिराज समस्त श्रुतसमुद्रका पारकूं पायकरि परम पदका आश्रय करे है। कैसा है यह चरित्र ? समस्त राग भावका विनाशक है। अर निर्मल समस्त सुखनिकी खानि है, अर जे निपुण ग्यानी जन इस सुकुमालचरित्रकूं परम सुखका लाभ के अर्थि सुने है ते पुरुप तुरतही रागरोसका नाशकरि परम वीत

राग धर्मका सेवन करे है, कैसा है यह चरित्र ? वृष कहिये मुनि-धर्म और श्रावकधर्म इन दोऊनका बीज कहिये मूल कारण है अर भगवान वृषदेव आदि वर्धमान जिनराज पर्यंत चोवीस तीर्थकर गुणनिके निवास समस्त लोकके परमेश्वर महेश्वर ऐसे अर्हंत परमेष्ठी अर समस्त कर्मनकरि रहित परमपदकूं प्राप्त भये परमपूज्य ऐसे अनन्तसिद्ध परमेष्ठी अर शिवके अभिलाषी समस्त मुनिराजन के हितकारी ऐसे आचार्य परमेष्ठी अर द्वादसांग श्रुतसमुद्रके पारंगत पचीस गुणनिकरि विराजमान ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी बहुरि आठवीस मूलगुणके धारक सम्यग्दर्शन ग्यान चारित्रकी एकतारूप मुक्तिमार्गके साधक ऐसे सकल साधु परमेष्ठी ऐसे यह पंच परमेष्ठी परमोत्कृष्ट तपका फलकूं प्राप्त भये ते पंच परम गुरु इस सुकुमाल-चरित्रकी परिपूर्णताविखैं मुझ सकल कीर्ति मुनिराजकूं अर तुम समस्त भव्य जीवनकूं पंचकल्याणरूप परम मंगल प्रकपंपनेकरि द्यौ। ऐसे यह प्रार्थनारूप तथा आशिर्वादरूप परम मंगल शास्त्रके परिसमाप्तिविखैं आचार्यने कीना है। अर निर्मल गुणरत्ननिका निधान तीनलोकविखैं अद्वितीय दीपकसमान समस्त दोषनिकरि-रहित अर पांच इन्द्रिया अर हिंसादिक पांच पापरूप वैरिनका घातक शस्त्र समान समस्त दोषनिकरिरहित अर कल्याण सुखका अर कर्मक्षयका मूलकारण चार ग्यानके धारक मुनिराजकरि पूजनीक ऐसो सम्यग्ज्ञानरूप परम पवित्र तीर्थ भूतलविखैं अद्वितीय अयिशयपणेकरि जयवंतो प्रवर्तो, यह जिनवाणीकी महिमा वर्णन करि अंतविखैं मंगल प्रगट दिखाया है। अर इस सुकुमाल चरित्र

मूलग्रन्थ संस्कृतके समस्त श्लोकनिकी संख्याका प्रमाण ग्यारहसे लेखकनिकरि जानिवे योग्य है।

चौपाई।

अर्हंत सिद्ध सूर उवझाय।
साधु भारती गण समुदाय॥
जैनधर्म सब मंगल रूप।
मंगल दायक होहु अनूप॥१॥

इत्याचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित सुकुमालचरित्र संस्कृत ग्रंथ ताकी देशभाषामय बचनिका विखैं सुकुमालकी माता यशोभद्रके दीक्षाका ग्रहण, अर यशोभद्र, सुरेन्द्रदत्त, वृषभांक, कनकध्वज, इनका मोक्षगमन अर अहमिंद्र देवके विभूतिका है वर्णन जामैं ऐसा नवम सर्ग समाप्त भया॥ ९॥

दोहा।

आदि अंत मंगल करो। श्री वृषभांक जिनेस॥
जैन धरम जिनभारती। हरि संसार कलेस॥१॥

सवैया।

ढुंढाहड देशमध्य जैपुर नगर साहैचारवर्ण राह चले अपने सुधर्मकी॥ रामसिंघ भूपतिके राजमाहि कमी नाहीं कभीकछु दृष्टि परैं मानू निज कर्मकी॥ वैश्यकुल जैनोको पूरवकृत पुण्यथकी पायो यह, खोलो अब मुदी दृष्टि भर्मकी॥ जैन वैन कान सुनो आतम स्वरूप मुनो चारैं अनुयोग भनो यही शीख मर्मकी॥ २॥

चौपाई ।

दोशी गोत दुलीचंद नाम । ताको सुत शिवचंद अभिराम ॥
नाथूलाल तास सुत भयो । जैनधर्मका शरणो लयो ॥ ३ ॥
श्रीदिवाण संगही अमरेस । पाय सहार पढ्यो श्रुतलेस ॥
कासलिवाल सदासुख पास । फिर कोनो श्रुतका अभ्यास ॥ ४ ॥
श्रीसुकुमालचरित्र रसाल । देखि कहो हरिचंद गंगवाल ॥
होय वचनिकामय जो येह । सवही जन वांच हित गेह ॥ ५ ॥
विन व्यारण पढ़े नहि ग्यान । मूल ग्रन्थका होय निदान ॥
ऐसे प्राथन तने वसाय । मूल ग्रंथको पाय सहाय ॥ ६ ॥
भावारथसों लिखयो येह । देशवचनिकामय धरि नेह ॥
वांचो पढो पढ़ावो सुनो । आतमहितकूं नीके मुनो ॥ ७ ॥
जो प्रमाद वसतैं कछु इहां । भोले पनेतैं मैंने कहा ॥
सो सव मूल ग्रंथ अनुसार । सुध करियो वुधजन सुविचार ॥८॥
उनवीस शत अठारह सार । सावण सुदि दशमी गुरुवार ॥
पूरण भई वचनिका येह । वांचो पढ़ो सुनो धरि नेह ॥ ९ ॥

दोहा ।

मंगल मय मंगल करन । वीतराग चिद्रूप ॥
मन वच तनुकरि ध्यावते । होहे त्रिभुवन भूप ॥१०॥

इति श्रीसकलकीर्ति आचार्य विरचित सुकुमाल चरित्र
संस्कृतग्रंथकी देशभाषामय वचनिका समाप्त ॥